नव वृंदावन

नव वृंदावन

(कहानी-संग्रह)

नव वृंदावन

विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय

कबीर मन्दिर, दिल्ली-110032

ISBN	:	81-901840-4-0
©	:	प्रकाशक
प्रकाशक	:	**कबीर मन्दिर** 518/6-बी, कड़कड़ी रोड, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-110032
संस्करण	:	2011
मूल्य	:	200.00
टाईप सैटर	:	मुस्कान कम्प्यूटर्स
आवरण	:	हरिपाल त्यागी
मुद्रक	:	बालाजी ऑफसेट, दिल्ली-110032

NAV VARANDAVAN
(Short Stories) by Vibhutibhushan Bandaopadyay

कथा-क्रम

शाप-मोचन

दशपारमिता के मंदिर में उस दिन सँपेरों का खेल देखने के लिए कई औरत-मर्द मंदिर के प्राँगण में एकत्र हुए थे, उन्हीं के बीच प्रद्युम्न ने पहली वार उस आदमी को देखा था।

उस दिन ज्येष्ठ मास की संक्रान्ति थी। चारों तरफ के गाँवों से औरतें दशपारमिता का पूजन करने आयी थीं। इसी उपलक्ष में अनेक सँपेरे, गायक-वादक, वाजीगर मंदिर में आ जुटे थे, कई माली तरह-तरह के सुन्दर-सुन्दर फूलों के गहने वनाकर लड़कियों को वेच रहे थे। मगध से एक सेठ कीमती रेशमी साड़ियाँ बेचने लाया था। उसकी दुकान पर लड़कियों की खूब भीड़ लगी थी। प्रद्युम्न ने सुना था, ज्येष्ठ संक्रान्ति के उत्सव के उपलक्ष में पारमिता के मंदिर में एक विख्यात गायक व बीनवादक आएँगे। वह मंदिर में उसी की खोज में आया था। सारे दिन की खोज के वावजूद वह उन्हें भीड़ में से वाहर नहीं निकाल पाया था।

संध्या से कुछ पहले मंदिर के चबूतरे पर एक सँपेरे ने अजब-अजब साँपों का खेल दिखाना शुरू कर दिया, और उसी के चारों तरफ बहुत-सी कौतुकप्रिय लड़कियाँ जमा हो गयीं। धीरे-धीरे वहाँ खूब भीड़ हो गयी। प्रद्युम्न वहाँ जाकर खड़ा तो जरूर था, मगर उसका मन साँपों के खेल की तरफ बिलकुल नहीं था। वह भीड़ के मध्य खड़े प्रत्येक व्यक्ति को गौर से देख रहा था कि शायद किसी का चेहरा या हाव-भाव बीन-वादक जैसा दिख जाए। बहुत देर तक लगातार देखने के बाद उसकी नजर एक प्रौढ़ व्यक्ति पर गयी, जो भीड़ में खड़ा उसी को निहार रहा था, शरीर पर मलिन व जीर्ण वस्त्र थे। न जाने क्यों प्रद्युम्न को लगा, यही है वह गायक। प्रद्युम्न लोगों को ठेल-ठाल कर उनकी ओर जाने को हुआ तो उन्होंने हाथ उठाकर प्रद्युम्न को भीड़ से बाहर निकलने का इशारा किया।

बाहर आकर प्रौढ़ ने उससे पूछा, 'मैं अवन्तरी गायक सुरदास हूँ। तुम मुझे ही खोज रहे थे न?'

प्रद्युग्न जरा चकित हुआ। उसके मन की बातें इन्होंने जानी कैसे?

प्रद्युम्न ने ससम्भ्रम होकर कहा, 'हाँ, मैं आपको ही खोज रहा था।'

प्रौढ़ ने कहा, 'तुम मेरे अपरिचित नहीं हो। तुम्हारे पिता के साथ कभी मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था। काशी जाता था तो तुम्हारे पिता से मिले बगैर कभी वापस नहीं आता था। तुम्हें बचपन में देखा था, तब तुम्हारी उम्र बहुत कम थी।'

'आप यहाँ आकर कहाँ ठहरे हैं?'

'नदी-किनारे एक टूटा मंदिर है। देखा है?'

'हाँ, देखा है। वहाँ पहले एक संन्यासी रहते थे न?'

'वे अब भी वहीं रहते हैं। तुम किसी दिन भी वहाँ आकर मुझसे मिल सकते हो। तुम यहाँ कहाँ रहते हो?'

'यहाँ के विहार में पढ़ता हूँ, तीन साल से। आप मंदिर में कितने दिन ठहरेंगे?'

'यह तुम्हें बताऊँगा। इस बीच मुझसे मिल लेना।'

प्रद्युम्न ने प्रणाम किया और विदा लेकर चला गया।

❑

संध्या तब तक हुई नहीं थी।

मंदिर जिस छोटी पहाड़ी पर था, उसके दोनों तरफ के चालू रास्तों से लड़कियाँ उत्सव से घर वापस लौट रही थीं। प्रद्युम्न की आँखें किसी की खोज में लड़कियों की भीड़ में यहाँ से वहाँ तक घूम गईं, फिर वह एकाएक लड़कियों को पीछे छोड़कर द्रुतगति से नीचे उतरने लगा। आचार्य नीलव्रत अत्यन्त कड़े मिजाज के व्यक्ति थे। पहले ही प्रद्युम्न में अन्यान्य छात्रों की तुलना में अधिक उत्सुकता, शरारत व उदण्डता देखकर उससे खूब सख्ती से पेश आते थे, इस पर अगर उन्हें यह मालूम हो गया कि वह देर रात को विहार में लौटा था तो फिर खैर नहीं।

मोड़ काटते ही बाईं तरफ के पहाड़ की ओर सरक गया। उधर खुला मैदान था। प्रद्युम्न ने देखा, दूर नदी किनारे मंदिर का चूड़ा नजर आ रहा है। चूड़े के ऊपर छायाच्छन्न आकाश में पक्षियों के दल-के-दल पंख फड़फड़ाते हुए घरों को लौट रहे थे। और भी दूर, एक सफेद बादलों का टुकड़ा पश्चिम में डूब रहे सूरज की लाली से सिंदूरी हो गया था।

हठात् पीछे से किसी ने प्रद्युम्न के कपड़े पकड़ कर खींचे।

प्रद्युम्न ने जैसे ही मुड़कर पीछे ताका, कपड़े खींचने वाली की आँखों में कौतुक की ज्योति चमक गयी थी। वह किशोरी। चम्पा-सी देह पर नीली साड़ी। जूड़े में नयी-नयी खरीदी फूलों की माला।

प्रद्युम्न विस्मय से बोला, 'तू कब आयी, सुनन्दा? मैंने तो तुम्हें वहुत खोजा, पर कहीं नजर ही नहीं आयी?'

पहले तो किशोरी का चेहरा लज्जा से लाल हो गया, फिर वह जरा रूठे अंदाज में बोली, 'हूँ, जैसे मुझे ही खोजने तुम यहाँ आए थे न। क्या मैंने देखा नहीं था कि तुम सिर्फ सँपेरों और बाजीगरों के चेहरों को निहार रहे थे।'

'सच कहता हूँ सुनन्दा, तुम्हें खोज रहा था। पहाड़ी से उतरते समय खोजा था, इसके पहले भी खोजा था। तुम किसके साथ आयी!'

उसी समय देखा गया कि लड़कियों का एक दल पहाड़ के ऊपर से उसी पथ से उतरता चला आ रहा है। उस पर नजर पड़ते ही सुनन्दा अचानक प्रद्युम्न को वहीं छोड़ तेज कदमों से नीचे उतरने लगी।

पीछे ही अपरिचित लड़कियों का दल था, ऐसी हालत में सुनन्दा का अनुसरण करना उचित नहीं होगा, यह सोचकर वह पहले तो कुछ क्षणों तक चुपचाप खड़ा रहा, फिर हताशा-मिश्रित क्रोध से वह गर्दन उठाए लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ सदर्प चलने लगा।

संध्या का हल्का अँधकार कब गहरा हो गया और वही गहरा अँधकार कब तरल से तरलतर होता हुआ अचानक ज्योत्स्ना में परिणत हो गया, अन्यमनस्क-से प्रद्युम्न को इसका जरा भी आभास नहीं हुआ। जब उसकी तंद्रा भंग हुई तो देखा, पूर्णिमा की शुभ्रोज्ज्वल ज्योत्स्ना ने पथ-घाट धो दिए हैं। दूर मैदान के वृक्षों के झुण्ड ज्योत्स्ना में दिपदिपा रहे थे। उसकी लिखाई-पढ़ाई हो तो कैसे? आचार्य पूर्णवर्द्धन त्रिपिटक का पाठ याद न होने की वजह से भले ही उसकी भर्त्सना करें, उस पर कोई असर पड़ने वाला नहीं। ऐसी रातों में युगों-युगों के विरहियों की मनोवेदना उसके प्राणों में आकर जो घर कर जाती थी, और अबाध्य मन इस परिपूर्ण ज्योत्स्ना रात्रि में महाकोट्ठी विहार के पाषाण अलिन्द में मानस सुन्दरियों के पीछे-पीछे जो डोलता-फिरता था, क्या इसके लिए वही कुसूरवार था?

दशपारमिता के मंदिर में संध्या-आरती के घंटों की ध्वनि अभी तक वातावरण में गूँज रही थी। दूर नदी के मोड़ के टूटे मंदिर का क्षीण आलोक जल उठा था, उत्सव से वापस आ रहे नर-नारियों का दल ज्योत्स्ना-भरे मैदान में आगे जाकर आँखों से ओझल हो रहा था। प्रद्युम्न की गति और तीव्र हो गयी।

पथ के किनारे एक पेड़ था। पेड़ के निकट पहुँचते ही प्रद्युम्न को लगा, पेड़ की ओट में जैसे कोई खड़ा है। थोड़ा-सा आगे बढ़ते ही पेड़ के पास आया तो उसके समस्त कष्टों को हरने वाली मीठी हँसी की तरंग से वह चौंक कर खड़ा हो गया। देखा, पेड़ के नीचे सुनन्दा खड़ी है, पेड़ के पत्तों की दरार से छनकर आ रहे ज्योत्स्ना के प्रकाश से उसका सर्वांग झिलमिला रहा था। प्रद्युम्न की उस पर नजर पड़ी तो वह सिर हिलाकर बोली, 'थोड़ी देर और हो जाती तो अच्छा होता। तब

यहाँ से गुजरते तो मुझे देख भी न पाते।'

सुनन्दा को देख कर प्रद्युम्न का मान-मयूर नाच उठा। बोला, 'हाँ, भला तुम्हें क्यों देख पाता। पेड़ के नीचे छिप कर तुमने खूब कमाल जो कर लिया! न भी देख पाता तो तुम्हें क्या! सच कहता हूँ सुनन्दा, मैं तुमसे खूब नाराज हूँ।'

सुनन्दा बोली, 'वाह, गलती भी खुद करेंगे और नाराज भी खुद होंगे। उस दिन क्या कहा था, याद है? सो क्यों याद रहेगा, याद रह गए थे, बस, दुनिया भर के सँपेरे और बाजीगर! उफ्, उनके पास जाने कैसे खड़े हो रहे थे? कितने मैने-कुचैले थे! मैं तो उनकी छाया तक से दूर रही।'

'तुम हो बड़े आदमी की बेटी–तुम्हारी तो बात ही अलग है–लेकिन तुम कौन-सी बात को कह रही हो–क्या याद नहीं रहा मुझे।'

'रहने दो। झूठ-मूठ का नाटक करने की जरूरत नहीं। खुद ही सोचो, क्या याद नहीं रहा? वही, उस दिन क्या कहा था?'

प्रद्युम्न कुछ सोच कर बोला, 'हाँ, याद आया–वही बाँसुरी...।'

सुनन्दा रूठे स्वर में बोली, 'सोच कर बताओ, कहा था कि नहीं। मैं दोपहर से आकर मन्दिर में बैठी थी। एक तो इतनी देर से आए, ऊपर से...। जाओ, मैं नहीं बोलती।'

प्रद्युम्न इस बार हँस पड़ा। बोला, 'अच्छा, सुनन्दा, यह तो बताओ, अगर तुमने मुझे देख लिया था तो बुलाया क्यों नहीं?'

'मैं क्या अकेली थी! दोपहर के वक्त मैं अकेली आयी जरूर थी, पर तब तो तुम वहाँ थे नहीं। इसके बाद हमारे गाँव की लड़कियाँ भी आ गयीं। भला उनके रहते, कैसे बुलाती?'

'अच्छा मान लिया, गलती मेरी थी। पर तुम जो बार-बार सँपेरों और बाजीगरों की बात कर रही हो, मैं उनके चक्कर नहीं लगा रहा था, दरअसल, मैंने सुना था कि अवन्ती से एक बड़े बीन-वादक आने वाले हैं। तुम तो जानती हो कि मेरी कई दिनों से इच्छा है कि मैं बीन बजाना सीखूँ। सो उन्हीं की खोज में भटक रहा था, उनसे मुलाकात भी हो गई। वे यहाँ से नदी-किनारे वाले देवालय में ठहरे हुए हैं। हाँ, तुम्हारे पिताजी कहाँ हैं?'

'तीन-चार दिन हुए, बाबा महाराज के बुलावे पर कौशम्बी गए हैं।'

प्रद्युम्न हठात् ऊँचे स्वर में हँस पड़ा। बोला, 'तभी तो! वरना भला तुम इतनी रात गए यहाँ होतीं।'

सुनन्दा ने जल्दी से प्रद्युम्न के होंठों पर दोनों हाथ रख दिए। लज्जित होकर बोली, 'चुप भी रहो। भला इतनी जोर से भी कोई हँसता है। तुम्हें जरा भी

लोक-लाज का डर नहीं। आरती खत्म होते ही लोग लौटने वाले होंगे।'

प्रद्युम्न की हँसी थम गई। बोला, 'अबकी बार तुम्हारे बाबा के आते ही मैं उनसे जरूर शिकायत करूँगा...।'

सुनन्दा नाराज होकर बोली, 'जरूर करना। वैसे भी मैं आरती तक मंदिर में रुकती हूँ, बाबा जानते हैं।'

प्रद्युम्न ने सुनन्दा की दाईं बाँह थाम ली, बोला, 'अच्छा, जाने दो, उनसे कुछ नहीं कहूँगा। चलो, तुम्हें बाँसुरी सुनाता हूँ। मेरे पास ही है, सच, तुम्हें सुनाने के लिए ही लाया था। उन्हें तो खोज रहा था सिर्फ इसलिए कि उनसे भली-भाँति बीन सीखूँगा।'

मगर नदी किनारे पहुँचते ही प्रद्युम्न बेहद निरुत्साहित हो गया। उसने बाँसुरी जरूर बजाई, किंतु स्वर में कशिश का नितान्त अभाव था। जैसे सुरों में उसके प्राणों का कोई योग ही न हो। वे दोनों एकान्त में पहले भी कई बार बैठे थे। सुनन्दा को बाँसुरी सुनना बहुत पसन्द था, इसी कारण प्रद्युम्न जब भी विहार से निकलता, साथ में बाँसुरी जरूर लाता। प्रद्युम्न की बाँसुरी के स्वप्निल सुरों के बीच दोनों के अनजाने में तप्त दोपहरी कब संध्या के अँधकार में विलीन हो जाती थी, यह पता ही नहीं चल पाता था। दोनों एक साथ हों और प्रद्युम्न इस कदर निरुत्साहित—ऐसा कभी पहले सुनन्दा ने नहीं देखा था।

न जाने क्यों, प्रद्युम्न को बार-बार वही जीर्ण कपड़े पहने अद्भुत-दर्शन गायक सुरदास याद आ रहा था। अपने विहार के कलाविद् भिक्षु बसुव्रत के आंके चित्र की तरह वह कैसा कुश्री व दुबला-पतला था। पुरानी पोथियों के भोज-पत्र की तरह उसकी पोशाक में मटमैला लाल रंग उभर आया था, जो अत्यन्त अप्रीतिकर था।

❑

अगले दिन सुबह प्रद्युम्न नदी-किनारे टूटे मन्दिर में गया। वहाँ जो देवी-मूर्ति हुआ करती थी, लुप्त हो चुकी थी। मन्दिर के सर्वांग में उग आए थे झाड़-झंखाड़ और साँपों के बिल। निकटवर्ती ग्राम-वासी इस तरफ कोई नहीं आते थे। सात-आठ महीनों से यहाँ एक आजीवक संन्यासी रहता था। उसी के दो-चार अनुगत भक्त बीच-बीच में आया-जाया करते थे, सो मन्दिर का पथ अपेक्षाकृत गुलजार था।

मन्दिर के अँधेरे-उजाले में प्रद्युम्न सुरदास से मिला। प्रद्युम्न को देख कर सुरदास ने खूब प्रसन्नता व्यक्त की। बोले, 'चलो, बाहर चलकर बैठते हैं। यहाँ बहुत अन्धेरा है।'

बाहर आकर सुरदास ने उसे रोशनी में भली-भाँति देखा, फिर जैसे खुद से ही बोले, 'होगा, तुम्हारे द्वारा ही होगा। मैं यह जानता था...।'

प्रद्युम्न ने दूर से सुरदास की मूर्ति देखकर अस्वच्छंदता का अनुभव किया था, मगर पास आकर उसका यह विचार जाता रहा। उसने गौर किया, सुरदास का चेहरा जरा बदसूत होने के बावजूद प्रतिभा व्यंजक था।

सुरदास बोले, 'मैं सोच रहा था, तुम आज जाओगे। तुम्हारे पिता तो प्रसिद्ध गायक थे, तुमने खुद कुछ सीखा है।'

प्रद्युम्न ने लज्जित होकर उत्तर दिया, 'जरा-सी बाँसुरी बजाना जानता हूँ।'

सुरदास ने उत्साह से कहा, 'जानना उचित ही है। तुम्हारे बाबा को जानते न हों, ऐसे लोग इस देश में बहुत कम हैं। प्रत्येक उत्सव में कौशम्बी से तुम्हारे बाबा के पास निमन्त्रण-पत्र आता था। हाँ, मैंने सुना है तुम बाँसुरी पर मेघ-मल्हार का आलाप खूब कर लेते हो? क्यों, यह सच है न!'

प्रद्युम्न ने विनीत-भाव से उत्तर दिया, 'विशेष कुछ जानता हूँ, ऐसा नहीं है। मन में जो आता है, वही बजाता हूँ। हाँ, बीच-बीच में कभी मेघ-मल्हार बजा लेता हूँ।'

सुरदास बोले, 'जरा बजाओ तो देखूँ, कितना जानते हो?'

प्रद्युम्न के पास बाँसुरी हमेशा होती थी। न जाने कब सुनन्दा से मुलाकात हो जाए और वह बाँसुरी सुनाने का अनुरोध कर बैठे।

प्रद्युम्न बाँसुरी बजाने लगा। पिता ने उसे बचपन से बड़े यत्न से राग-रागनियाँ सिखायी थीं, इसके अलावा संगीत की तरफ उसका स्वाभाविक रुझान भी था। बाँसुरी से मधुर सुर निकलने लगे। आलाप अति कर्णप्रिय था। लता-गुल्मों व फल-फूलों के अन्तर से निकलकर, उदार नील-आकाश और ज्योत्स्नामय रातों के मर्म से फूट कर जो रसधारा विश्व में सब समय प्रवाहित होती रहती है, उसकी बाँसुरी के गान में वही रस जैसे मूर्त्त हो उठा था। लगता था, सुरदास को इतनी आशा नहीं थी, उन्होंने प्रद्युम्न को आलिंगन में लेकर कहा, 'वाह, इन्द्रद्युम्न का बेटा ऐसा ही होगा, यह कोई बड़ी वात नहीं। समझ गया, तुम्हीं से होगा, यह मैं पहले ही जानता था।'

अपनी प्रशंसा सुनकर प्रद्युम्न का तरुण-सुन्दर मुखड़ा लाज से लाल हो आया।

दो-एक अन्य बातों के बाद प्रद्युम्न विदा लेने को उद्यत हुआ तो सुरदास बोले, 'सुनो प्रद्युम्न, तुमसे एक गोपनीय बात कहनी है। यह बात बताने के लिए पहले भी तुम्हें बहुत खोजा था, अबकी बार तुम मिल गए, यह अच्छा ही हुआ।

हाँ, मेरी बात सुनने से पहले तुम्हें प्रतिज्ञा करनी होगी कि यह बात तुम किसी और को नहीं बताओगे।'

प्रद्युम्न अत्यंत विस्मित हुआ। इस प्रौढ़ के साथ कुल मिलाकर एक दिन का ही परिचय था। ऐसी कौन-सी गोपनीय बात थी, जो वे उसे बताना चाहते थे।

वह बोला, 'बिना बात सुने मैं कैसे...'

सुरदास बीच में ही बोले, 'तुम ज्यादा मत सोचो, कोई अनिष्टकारी बात होती तो मैं तुमसे कहता नहीं।'

गोपनीय बात जानने के लिए प्रद्युम्न को अत्यंत कौतुहल हुआ। उसने प्रतिज्ञा की कि वह सुरदास की बात किसी से भी नहीं बताएगा।

सुरदास धीमे कण्ठ-स्वर में बोलने लगे, 'नदी के इस बड़े कटाव में जो द्वीप बन गया है, उसे देखा है? उसके सामने ही एक बड़ा मैदान है। उस द्वीप में सरस्वती देवी का पर बहु-प्राचीनकाल का मंदिर था। सुना है, इस देश के जितने बड़े-बड़े गायक थे, शिक्षा-समाप्ति के बाद पहले मंदिर में आकर देवी-पूजा करते थे और सरस्वती को तुष्ट करने के बाद ही व्यवसाय आरम्भ करते थे। यह बहुत पुरानी बात है, मंदिर आज भी टूटी-फूटी अवस्था में वहाँ खड़ा है। इस द्वीप में बैठकर आषाढ़ पूर्णिमा की रात में लीन होकर मेघ-मल्हार का आलाप करने से सरस्वती देवी स्वयं गायक के सम्मुख आविर्भूत होती हैं। वह बात इस देश में कोई नहीं जानता। आषाढ़, श्रावण, भाद्र, इन तीन महीनों की तीन पूर्णिमाओं को हर बार अगर सरस्वती देवी को दर्शन देने को विवश किया जा सके तो उनके वर से गायक संगीत-क्षेत्र में सिद्ध हो जाए। उनके वर से संगीत संक्रान्त का कोई भी विषय तब गायक के लिए अज्ञात नहीं रहेगा। एक बात और, जो गायक वर की इच्छा करे, उसे अविवाहित होना चाहिए।...मैं कह रहा था, आने वाली पूर्णिमा में मैं और तुम इस बारे में कोशिश करके देखें, तुम्हारा क्या विचार है?'

सुरदास की बात सुनकर प्रद्युम्न अवाक् रह गया। भला यह कैसे सम्भव था? आचार्य बसुव्रत ने कलाविद्या के संबंध में व्याख्यान देते समय अनेक बार कहा था कि कला की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की जिस मूर्ति की हिन्दू लोग कल्पना करते हैं, वह हवाई कल्पना ही है, उसका वास्तविकता से कोई संपर्क नहीं। सचमुच उसके दर्शन कर पाना—भला यह भी सम्भव है?

प्रद्युम्न चुप रहा।

सुरदास ने जरा व्यग्र होकर पूछा, 'क्या तुम्हारी इसमें सहमति नहीं?'

प्रद्युम्न बोला, 'यह बात नहीं। मैं तो सोच रहा था, यह कैसे सम्भव है कि...'

सुरदास बोले, 'इस बारे में तुम निश्चिन्त रहो। इसकी सत्यता तुम अपनी आँखों से ही देखो। अगर तुम सहमत हो तो मैं इसी पूर्णिमा को सारी व्यवस्था कर रखूँ।'

सुरदास की बात सुनने के बाद से ही प्रद्युम्न अत्यंत विस्मय व कौतुहल से न जाने किन विचारों में खो गया था। वह गर्दन हिलाकर बोला, ठीक है, आप व्यवस्था कर रखें, मैं आऊँगा।'

सुरदास बोले, 'शाबास, मैं बहुत खुश हुआ। तुम बीच-बीच में एकाध बार यहाँ आना, तुम्हें भी तैयार होने के लिए दो-एक काम करने होंगे, मैं सब समझा दूँगा।'

प्रद्युम्न ने एक बार फिर सम्मति सूचक गर्दन हिलाई और विदा लेकर चल पड़ा।

इसके बाद वह चिन्तित-सा विहार के पथ पर बढ़ने लगा।

उसे याद आ रहा था—देवी सरस्वती साक्षात् दर्शन देंगी। सुना है, श्वेत-द्रुम-सा उनका रंग है और मुखश्री तो अत्यंत सौंदर्य-सम्पन्न!' आचार्य बसुव्रत भले ही कुछ भी कहें, मगर...

❑

भद्रावती नदी के किनारे शाल, पियाल और तमाल के वन में उस बार घनघोर बारिश हुई। सारे आकाश में जैसे किसी विरहिणी पुरसुन्दरी की अत्यन्त-विन्यस्त मेघवरण केश-राशि बिखर गयी थी। प्रावृट रजनी का घनांधकार विरहिणी के प्रियहीन प्राण की निबिड़ निर्ज्जनता की भाँति चारों ओर फैल गया था। दूर वन के झुण्डों की हवा यों सरसरी रही थी, जैसे उसकी आकुल दीर्घश्वास। उसी की प्रतीक्षारत दोनों आँखों से अश्रु की तरह जैसे झर-झर अविश्रान्त वारि वर्षण हो रहा था। मेघाच्छन्न आकाश के वक्ष पर जब विद्युत चमकती तो लगता उसके हताश प्राणों पर क्षणिक आशा के मेघदूत ने दस्तक दी हो।

आषाढ़ की पूर्णिमा की रात प्रद्युम्न सुरदास के साथ नदी के घाट पर गया। वे जब वहाँ पहुँचे, तब मेघ नीचे उतरकर सारे आकाश में छा गए थे, चारों ओर तरल अँधकार में अस्पष्ट प्रकाश नजर आ रहा था।

प्रद्युम्न ने सुरदास के कथनानुसार नदी में स्नान किया और कपड़े बदल लिए। संगी के क्रिया-कलापों से प्रद्युम्न समझ गया कि वह एक तांत्रिक है। उनके विहार में एक भिक्षु थे, वे योगाचार्य पद्मसंभव के शिष्य थे। उसी भिक्षु से तांत्रिक क्रिया-कलाप की कुछ-कुछ बातें उसने सुनी थीं। सुरदास अपने साथ रक्तजवा की कई मालाएँ लाए थे, उनमें से कुछ उन्होंने खुद पहनीं और कुछ प्रद्युम्न के गले

में डाल दीं। एक दिया जलाकर रोशनी की। उनकी पूजा के आयोजन में सहयोग देते-देते प्रद्युम्न हाँफ उठा। अन्त में इस कांड का क्या परिणाम निकलता है—यह देखने के वास्ते उसके मन में इतना कौतुहल फूट पड़ा था कि अँधेरी रात में एक अपरिचित तांत्रिक के साथ अकेले होने के भय की ओर बिलकुल भी ध्यान नहीं जा रहा था। काफी रात गुजर गयी, तब जाकर होम समाप्त हुआ।

सुरदास बोले, 'प्रद्युम्न, अब तुम अपना काम आरम्भ करो, मेरा काम समाप्त हुआ। सावधान रहना, तुम्हारे कृतित्व पर सारी सफलता निर्भर करती है।'

उनकी आँखों में न जाने कैसी भूख चमक उभरी, जिसे प्रद्युम्न पसन्द न कर सका। फिर भी वह चुपचाप बैठ गया और बाँसुरी पर मेघ-मल्हार का आलाप छेड़ दिया।

आकाश-वातास नीरव थे। अँधेरे में सामने के मैदान में कुछ भी देख पाना सँभव नहीं था। शाल-वन में हवा का झोंका चलता तो डालों-पत्तों से अजीब-सा अस्पष्ट स्वर उभरता। बड़े मैदान के पार शाल वन के पास दिक्चक्रवाल के किनारे नैश प्रकृति ने पृथ्वी के वक्ष की अँधकारमय शैय्या पर अपना आँचल बिछा दिया था। सिर्फ भद्रावती को विश्राम नहीं था, जो न जाने किस अन्तर में खुद को विलीन करने की आकुल आकांक्षा से लगातार बहती चली जा रही थी—मृदु गुँजन में आनंद-संगीत गाती, किनारे-किनारे ताल देती। हठात सामने के मैदान से सारा अँधेरा छंट गया और अँधकार को चीरकर शुभ्र-मैदान तरल आलोक से प्लावित हो उठा। प्रद्युम्न ने सविस्मित देखा—मैदान के बीचोंबीच शत-शत पूर्णिमाओं की ज्योत्स्ना से अपरूप प्रकाश-मण्डल में कोई एक ज्योत्स्नावरणो अनिंद्यसुंदरी महिमामयी तरुणी खड़ी है। उसकी निविड़ कृष्णा केशराशि अयत्नविन्यस्त होकर उसके अपूर्व ग्रीवादेश के आस-पास बिखरी पड़ी है, बड़ी-बड़ी आँखों का कृष्णपद्म यों झिलमिला रहा था, जैसे किसी स्वर्गलोक के शिल्पी की तूलिका से अंकित हो, उसकी तुषारधवल बाहूवल्ली दिव्य पुष्पभरण से मंडित थी, उसकी क्षीण कटि में नील वसन के अन्दर छिपी मणिमेखला दीप्तिमान हो रही थी। रक्तकमल-से उसके दोनों पाँवों को अपने हृदय में संजोने के वास्ते धरती पर बासन्ती पुष्पों के गुच्छे फूट रहे थे।...हाँ, यही तो देवी-रानी हैं। इसी की वाणी की मंगल-झँकार से देश-देश के शिल्पियों की सौंदर्य तृष्णा सृष्टिमुखी हो उठी है, इसी के आशीर्वाद से कोने-कोने में सत्य की प्राण-प्रतिष्ठा हो रही है, इसी के प्राण-भण्डार में विश्व का सौन्दर्य-सम्भार नित्य मौजूद है, इसकी महिमा शाश्वत है, इसका मूल्य अक्षय है, इसकी वाणी चिरनूतन है।

प्रद्युम्न के देखते-देखते देवी की मूर्ति धीरे-धीरे विलुप्त हो गयी। ज्योत्स्ना

फिर म्लान पड़ गयी। हवा फिर निस्तब्ध होकर बहने लगी।

अनेक क्षणों तक प्रद्युम्न का मोह-भाव भंग नहीं हुआ। उसने जो देखा था—वह स्वप्न था या सत्य? एकाएक सुरदास की आवाज सुनकर वह चौंका। सुरदास कह रहे थे, 'मेरा अभी यहाँ काम बाकी है, तुम्हारी इच्छा हो तो जा सकते हो। क्यों, मेरी बात झूठी नहीं थी, देख लिया न?'

सुरदास की बात उसे असंलग्न-सी प्रतीत हुई। उनके चेहरे की ओर ताकते हुए प्रद्युम्न ने देखा, उनकी आँखों अर्द्ध-अँधकार में जैसे अंगारोंकी तरह ज़ल रही हों।

उनसे विदा लेकर जब वह विहार की ओर रवाना हुआ, पूर्णिमा के चाँद को तब मेघों ने प्रायः ढंक दिया था। जो थोड़ी-सी ज्योत्स्ना छितरायी हुई थी, उसका रंग पीला पड़ गया था। ग्रहण के समय ज्योत्स्ना का ऐसा रंग कभी-कभार ही उसने देखा था।

मैदान खासा बड़ा था, पार करने में काफी समय लग गया। मैदान के बाद बड़ा वन शुरू हुआ। बेहद घना वन। शाल और देवदारु के वृक्षों की डालियाँ एक-दूसरे से जुड़ी दूर-दूर तक फैली थीं। अँधकार भी बहुत था। चलते-चलते भोर न हो जाए, इस डर से वह द्रुतगति से आगे बढ़ रहा था। चलते-चलते उसकी आँखों को लगा, जैसे एक स्थान से जरा-सी रोशनी निकल रही है। पहले उसने सोचा, वृक्षों के पत्तों की दरार से ज्योत्स्ना छिटक कर आ रही होगी, भगर गौर से अच्छी तरह देखा तो पता चला कि यह रोशनी ज्योत्स्ना-जैसी नहीं है, वरन... कौतुहल इस कदर बढ़ा कि रास्ता छोड़कर वन के अन्दर घुस गया। जिस पीपल की ओट से रोशनी निकल रही थी, उसके पास जाकर उसने झुककर देखा तो अवाक् रह गया।

यह क्या! इन्हीं को तो उसने थोड़ी देर पहले मैदान के बीचोंबीच देखा था—यह तो वही अपरूप सुन्दर नारी हैं।

कमाल है! उसने देखा, कुछ देर पहले मैदान के बीचोंबीच जिन्हें देखा था, वही अपरूप द्यूतिशालिनी नारी वन में चारों ओर घूमती फिर रही थी। जुगनुओं की दुम से जैसे रोशनी निकलती है, वैसे ही इनके समस्त अंग से स्निग्धोज्ज्वल प्रकाश निकल रहा था। उस प्रकाश से दूर-दूर तक वन में उजाला फैल गया था। थोड़ा और पास जाकर उसने गौर किया, इनकी बड़ी-बड़ी आँखें अर्द्ध-निमीलित हैं, जैसे किसी नशे के आलम में वे रास्ता तलाश कर रही हों, किन्तु रास्ता मिल नहीं रहा हो और वे पीपल के तने के चारों ओर चक्कर काट रही हों—उनका चेहरा अत्यंत उतरा हुआ था।

हठात् प्रद्युम्न भयभीत हो उठा। उसने सोचा, मैदान में सरस्वती देवी के दर्शन से लेकर अब तक सारी घटनाएँ नितान्त भौतिक हैं, वरना इस निर्जन रात में शाल-वन में यह कैसा काण्ड।

उससे वहाँ बिलकुल खड़ा नहीं रहा गया। वन से बाहर निकलकर जब वह तेज कदमों से चलता हुआ विहार के उद्यान में पहुँचा, म्लान चाँद तब कुमारश्रेणी के पहाड़ के पीछे अस्त हो रहा था।

और रात को बिस्तर पर सोते ही उसने सपना देखा—भद्रावती के गहरे काले पानी के तल में रात के अँधेरे में न जाने कौन-सी एक देवी रास्ते से भटक गयी है, वह जितना भी ऊपर उठने की कोशिश कर रही हैं, पानी की लहरें उतना ही उसे नीचे ले जा रही हैं, नदी के पानी में धीरे-धीरे उसकी रोशनी बुझती जा रही है, आसपास अँधेरा घनीभूत हुआ जा रहा है, मछलियों ने उसके दोनों पाँवों को कुतर-कुतर लहूलुहान कर दिया है। व्यथित-देह, विपन्न और दिशाहारा देवी का दुख देखकर एक वृहद माछ दाँत निकालकर हिंस्र हँसी हँस रहा है। माछ का चेहरा गायक सुरदास-जैसा है।

❑

प्रद्युम्न सुबह उठते ही आचार्य पूर्णवर्द्धन के पास गया। और सुरदास के साथ पहली मुलाकात से लेकर पिछली रात तक की समस्त गाथा सुना दी। आचार्य पूर्णावर्द्धन बौद्ध दर्शन के अध्यापक थे। मठ के भिक्षुओं में वही सर्वाधिक पुराने व विज्ञ थे, इस कारण सभी उनका आदर करते थे। सब-कुछ सुनकर वे विस्मित हुए, साथ ही उनकी आँखों में शंकाओं के साए उभर आए।

पूछा, 'यह बात पहले क्यों नहीं बताई?'

'उन्होंने मना कर रखा था। मैंने न बताने की प्रतिज्ञा की थी...।'

'समझा। तब यहाँ बताने क्यों आए हो?'

'अब मुझे लगता है, जैसे मैंने किसी का अनिष्ट किया है।'

पूर्णवर्द्धन ने थोड़ी देर तक कुछ सोचा, फिर बोले, 'ऐसा कुछ घटेगा, यह मैं जानता था। पद्मसंभव और उसके कुछ नासमझ तांत्रिक शिष्य देश के धर्म-कर्म का लोप करने बैठे हैं। स्वार्थ-सिद्धि के लिए ऐसा कोई काम नहीं, जिसे ये लोग न करते हों। मैं खूब जानता था कि तुम्हारी यह स्वच्छंदता व अनावश्यक कौतुहल-प्रियता ही तुम्हारे सर्वनाश का मूल होंगे। तुमने कल रात बेहद अन्यायपूर्ण काम किया है। तुमने देवी सरस्वती को बंदिनी बनाने में सहयोग दिया है।'

इस बार प्रद्युम्न के विस्मित होने की बारी थी। उसकी जबान से जरा भी आवाज नहीं निकली।

पूर्णवर्द्धन बोले, 'इस सारे कुसंसर्ग से दूर रखने के वास्ते ही मैंने किसी छात्र को विहार से बाहर जाने की अनुमति नहीं दी। मगर जाने दो, तुम्हारी उम्र ही क्या है, इसमें तुम्हारा दोष नहीं। अच्छा, यह तो बताओ, तुम्हारा यह सुरदास देखने में कैसा है?'

प्रद्युम्न ने सुरदास की आकृति का वर्णन कर दिया।

पूर्णवर्द्धन बोले, 'मैं इसे पहचानता हूँ। तुम जिसे सुरदास कहते हो, वह सुरदास नहीं, न ही उसका घर अवन्ती में है। यह तो प्रसिद्ध कापालिक गुणाढ्य है। कार्यसिद्धि के लिए तुम्हें अपना गलत परिचय दिया है।'

प्रद्युम्न अधीर हो उठा। बोला, मगर आपने जो कहा है...।'

पूर्णवर्द्धन बीच में ही बोले, 'सुनो, तुम्हें पूरा इतिहास बताता हूँ। नदी किनारे सरस्वती मन्दिर का जो भग्न स्तूप है, वह हिन्दुओं का एक अत्यन्त विख्यात तीर्थ स्थान है। प्रायः दो सौ साल पहले एक तरुण गायक वहाँ रहता था। तब मन्दिर की अवस्था बहुत समृद्ध नहीं थी। मगर कहा जाता है कि वह गायक मेघ-मल्हार में ऐसा सिद्ध था कि आषाढ़ की पूर्णिमा की रात में उसके आलाप से मुग्ध होकर देवी सरस्वती स्वयं उसके सामने आविर्भूत हो जाती थी। इसी से वह मन्दिर एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान बन गया। उस गायक के मर जाने के बाद भी पूर्णिमा की रात को सिद्ध गायक मल्हार का आलाप करता तो देवी जैसे किसी आकर्षण से उसके पास पहुँच जातीं। यह गुणाढ्य एक बार अवन्ती के प्रसिद्ध गायक सुरदास के साथ इस द्वीप में आया था। सुरदास मेघ-मल्हार में सिद्ध थे। कहते हैं, उनका गाना सुनकर सरस्वती देवी उनके सम्मुख आविर्भूत हुई थीं और उनसे वर माँगने को कहा था। सुरदास ने विनती की, कि वे देश के संगीतज्ञों के बीच श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करें। सरस्वती देवी ने उन्हें यही वर दे दिया। इसके बाद देवी ने जब गुणाढ्य से वर माँगने को कहा तो देवी के रूप से मुग्ध होकर उसने उन्हीं को पाने की कामना व्यक्त कर दी। सरस्वती देवी ने कहा, उन्हें पाना निर्गुणी के बूते का काम नहीं। उसका नाम भले ही गुणाढ्य था, पर वह किसी कला में निपुण नहीं था कि उन्हें प्राप्त कर पाता। इसके लिए अनेक जन्मों की साधना की जरूरत थी। सरस्वती देवी के अन्तर्निहित होते ही मूर्ख गुणाढ्य का मोह और बढ़ गया, इसके साथ देवी सरस्वती के प्रति उसका क्रोध भी। वह तांत्रिक मंत्रबल से देवी को बंदिनी बनाने के लिए उपयुक्त तांत्रिक-गुरु की खोज में लग गया। मैं जानता हूँ, वह एक संन्यासी से तंत्र-शास्त्र की शिक्षा लेता था। कुछ दिनों के बाद संन्यासी को उसकी तंत्र-साधना का वास्तविक हीन कारण मालूम हुआ तो उसे भगा दिया। यह सारी कहानी इस देश के सभी पुराने लोग जानते हैं। बाद में मुझे गुणाढ्य की

कोई खबर नहीं लगी। सोचा था, वह इस देश से चला गया। किन्तु अब तुम्हारी बात सुनकर मुझे लगता है कि कल रात वह फिर अपने हीन उद्देश्य में प्रवृत्त हुआ था। इतने दिन तक वह इसी उद्देश्य-हेतु कहीं तंत्र-साधना करता रहा था। खैर! तुम इसी वक्त जाकर पता लगाओ कि वह मन्दिर में है या नहीं। अगर हो तो मुझे खबरदेना।'

प्रद्युम्न वहाँ एक पल भी नहीं रुका। वह भागता हुआ विहार के उद्यान में जा पहुँचा। तब धूप काफी निकल आई थी, विहार के पाठार्थियों के समवेत कण्ठ का स्तोत्र-गान उसके कानों में आ रहा था—

जे धम्मा हेतूप्र पभवा
तेसः हेतुः तथागतो आह
तेसंच जे निरोधा
अवं वादी महासमनो

जाते-जाते उसने देखा, उद्यान के एक कोने में एक बड़े आम-वृक्ष की छाया में चित्रकार भिक्षु बसुव्रत हिरण-चर्म के आसन पर बैठे-बैठे शायद कुछ आँक रहे थे, मगर उनके चेहरे पर अतृप्ति और असफलता के चिह्न अंकित थे।

प्रद्युम्न ने जो सोचा था, वही हुआ। मंदिर में जाकर उसने देखा, वहाँ कोई नहीं। गुणाढ्य वहाँ से लापता था, साथ ही आजीवक संन्यासी भी नहीं था। एक-दो जवाग्र-पान के मटके थे, आग जलाने को कुछ सूखी लकड़ियाँ इधर-उधर पड़ी थीं।

उस दिन गहरी रात में प्रद्युम्न बिना किसी से कुछ बोले चुपचाप विहार छोड़कर चला गया।

❑

एक साल गुंजर गया।

विहार छोड़ने के बाद प्रद्युम्न ने एक बार केवल सुनन्दा से मिलकर कहा था कि वह किसी विशेष काम से विदेश जा रहा है, जल्दी ही वापस आएगा। इस एक साल में वह काशी, उत्तर कौशल और मगध में जगह-जगह खोजता फिरा था, मगर कहीं भी गुणाढ्य का पता नहीं चला।

हाँ, घूमते-घामते उसने कई कौतुहलजनक बातें जरूर सुनी थीं।

मगध के प्रसिद्ध भास्कर मिहिरगुप्त राजा के आदेशानुसार तथागत की मूर्ति तैयार करने में लगे थे। एक वर्ष के परिश्रम के बाद उन्होंने जो मूर्ति गढ़ी थी, उसका चेहरा इस कदर रूढ़ और भाव-विहीन था कि वह बुद्ध की मूर्ति थी या मगध के दुर्दान्त दस्यू दमनक की, यह उस देश के लोग समझ नहीं सके।

तक्षशिला के विख्यात दार्शनिक पंडित यमुनाचार्य मीमांसादर्शन का भास्य प्रशायन करने बैठे थे, हठात् उनकेसाथ ऐसा दुर्योग हुआ कि वे आगे सूत्रों का अर्थ न कर पाए व दुबारा वैदिक व्याकरण के सुवंत प्रकरण से पढ़ना शुरू कर दिया।

महाकोट्ठी विहार के चित्रविद्या-शिक्षक भिक्षु वसुव्रत 'बुद्ध और सुजाता' नामक अपना चित्र साल भर की कोशिश के बावजूद मन-मुताबिक आँक नहीं पाए थे और उससे विरक्त होकर फिलहाल शकुन-शास्त्र की चर्चा में बेहद दिलचस्पी लेने लगे थे।

एक दिन प्रद्युम्न को पता चला कि उरू गाँव के निकट एक निर्जन स्थान में एक गो-चिकित्सक आकर ठहरे हुए हैं। उसके हुलिए का वर्णन काफी हद तक सुरदास से मेल खाता था। उसी समय वह गाँव पहुँचा और कइयों से पूछताछ की, मगर गो-चिकित्सक का पता कोई भी नहीं दे सका।

उस दिन घूमते-घूमते वह थक गया तो गाँव के एक कोने में एक बड़े वटवृक्ष की छाया में जा बैठा। संध्या अभी तक उतरी नहीं थी, हल्की हवा में वृक्ष के पत्ते धीरे-धीरे नाच रहे थे। पास के मैदान में पकी हरियाली सोने की तरह चमचमा रही थी, कुछ दूर एक जलाशय में ढेर सारे कुमुद के फूल खिले हुए थे, अनेक वन्य हंस उसके पानी में खेल रहे थे।

सामने कुछ दूर एक छोटा पहाड़ था। पहाड़ की देह से वह रहा था एक झरना। पहाड़ के नीचे एक जगह झरने का पानी कुछ अटक कर जमा हो गया था और उसी से वहाँ जलाशय बना था। प्रद्युम्न ने अचानक देखा, पहाड़ से एक औरत नीचे उतर रही है।

उसे देखकर न जाने उसके दिल में कैसा सन्देह उपजा कि वह आगे बढ़ गया। जलाशय के एक तरफ ऊँचे किनारे पर जाकर देखते ही जैसे उसका दिमाग घूम गया—यही तो हैं...यही तो हैं वे। भद्रावती के तीर पर शालवन में यही तो रास्ता भूलकर भटक रही थीं, मैदान के बीचोंबीच ज्योत्स्नामय रात में इन्हीं को तो देखा था—हाँ, अब उनके अंग में उस रोशनी का लेशमात्र भी नहीं, कपड़े अत्यन्त मलिन थे। किन्तु आँखें वही थीं और वही था सुन्दर देह-गठन!

वहाँ खड़े-खड़े देखते हुए उसे कोई संशय नहीं रहा कि ये वहीं हैं। उसके दिल में अजीब-सा झंझावात मचल उठा था। वह उत्तेजना के तीव्र बहाव में विहार छोड़कर सुरदास की खोज में निकला था, मगर उससे मुलाकात हुई तो क्या करेगा, यह नहीं सोचा था। इसी कारण वह एक तरह से छिपकर वहाँ से चला आया था।

रोज-रोज संध्या के समय प्रद्युम्न वट-वृक्ष के नीचे आ बैठता था। रोज संध्या से पहले देवी पहाड़ से नीचे उतरकर आतीं, और संध्या के समय कलसी में

पानी भर कर ऊपर चली जाती। यह दृश्य वह रोज देखता।

इसी प्रकार कुछ दिन बीत गए। एक दिन प्रद्युम्न मैदान के वृक्ष तले चुपचाप बैठा था। उसी समय देवी जलाशय में उतरीं। वह भी न जाने क्या सोच कर जलाशय के इधर के किनारे आ खड़ा हुआ। देखा, देवी कलसी नीचे रखकर कुमुद के फूल तोड़कर संग्रह करने में व्यस्त है। एक बड़ा फूल जलाशय के इधर गहरे पानी में खिला था। देवी ने उसे पाने के लिए थोड़ी निष्फल कोशिश की, इसके बाद आँखें उठाकर ऊपर देखा तो सामने ही प्रद्युम्न पर नजर चली गई। हठात् वे जरा-सा अप्रतिभ होकर हँसीं, फिर मुस्कराकर उससे बोलीं, 'यह फूल मुझे तोड़कर दोगे?'

'जरूर! मगर आप एक काम करें तो।'

'कैसा काम? बोलो।'

'मुझे कुछ खाने को देंगी? मैंने सारा दिन कुछ नहीं खाया।'

देवी के चेहरे पर व्यथा के चिह्न उभर आए। बोलीं, 'हाय...! तो तुमने अब तक बताया क्यों नहीं। इस पार आ जाओ। फूल को रहने दो।'

प्रद्युम्न पानी में उतरा और फूल तोड़कर दूसरे किनारे आ लगा।

देवी बोलीं, 'तुम मैदान के बीच उस बड़े पेड़ के नीचे रोज बैठे रहते हो न?'

प्रद्युम्न ने उनके हाथ में फूल देते हुए कहा, 'हाँ, मैं भी देखता हूँ, आप संध्या के समय रोज पानी भरने आती हैं।'

देवी मुस्कराकर बोलीं, 'उस पहाड़ के ऊपर ही हमारा घर है। तुम चलो मेरे साथ, तुम्हें खाने को दूँगी।'

अचानक देवी को न जाने क्या हुआ कि वे विह्वल दृष्टि से चारों तरफ देखने लगीं। इसके बाद वे पहाड़ पर चढ़ने लगीं, पीछे-पीछे प्रद्युम्न चल पड़ा। पहाड़ के ऊपर कुछ दूर बाँसों के झुरमुट की आड़ में खासी साफ-सुथरी एक कुटिया बनी हुई थी। देवी बन्द द्वार खोलकर अन्दर घुसते हुए प्रद्युम्न से बोलीं, 'आओ।'

प्रद्युम्न ने देखा, कुटिया में कोई नहीं। पूछा, 'आप क्या यहाँ अकेली रहती हैं?'

देवी बोलीं, 'नहीं। एक संन्यासी मुझे यहाँ अपने साथ लाए हैं। वे क्या करते हैं, मैं नहीं जानती, किन्तु बीच-बीच में वे कहीं चले जाते हैं—पाँच-छः दिन के बाद आते हैं। तुम यहाँ बैठो।'

देवी ने मिट्टी का पात्र भरकर उसे जवाग्र पीने को दिया, जिसका स्वाद अमृत की तरह था, ऐसा स्वादिष्ट जवाग्र उसने पहले कभी नहीं पिया था।

प्रद्युम्न को लगा, अगर आचार्य पूर्णवर्द्धन की बात सच हुई और अगर वह

जो कुछ देख रहा है, वह इन्द्रजाल न हुआ तो फिर यही तो हैं सरस्वती, उसके सामने। उसे यह जानने का कौतुहल हुआ कि वे अपने बारे में क्या बोलती हैं।

उसने पूछा, 'आप लोग इसके पहले कहाँ थे? आपका देश कहाँ हैं?'

देवी लकड़ी के एक बड़े पात्र में बड़े प्यार से सूप और अन्न परोसने में व्यस्त थीं, प्रश्न सुनकर विस्मय से वे प्रद्युम्न को देखकर बोलीं, 'मेरी बात बोल रहे हो? मेरा देश कहाँ है, मैं नहीं जानती। सुनती हूँ, मैं विदिशा की राह किनारे एक टूटे मन्दिर में अचेतन अवस्था में पड़ी थी, संन्यासी मुझे वहाँ से उठा लाए हैं। तभी से यहाँ हूँ। इसके पहले कहाँ थी, यह मुझे याद नहीं रहा।'

वे अन्यमनस्क भाव से बाहर सांझ के रक्तिम आकाश में, जहाँ गाँव के सीमांत पर वन के ऊपर सूर्य डूब रहा था, देखती रह गईं—जैसे कुछ याद करने की कोशिश कर रही हों, मगर कुछ याद नहीं आ रहा हो। अचानक न जाने क्या सोचकर उनकी बड़ी-बड़ी आँखों से आँसू बह निकले।

उन्होंने जल्दी से आँचल से आँसू पोंछ लिए और प्रद्युम्न के सामने अन्न से भरा हुआ लकड़ी का पात्र रख दिया। बोलीं, 'खाने की कोई चीज नहीं। तुम रात को यहीं रहो, मैंने पद्‌म के बीज सूखने को रखे हैं, उसी से खीर बनाकर दूँगी।'

प्रद्युम्न की आँखें छलछला आयीं।...ओ, विश्व की आत्मविस्मृता सौन्दर्य लक्ष्मी, विदिशा महाराज व महाश्रेष्ठियों के समवेत रत्न-भण्डार तुम्हारे पाँव की धूल के भी योग्य नहीं। इस देश के पथ की धूल ने ऐसा क्या पुण्य किया हे माँ, जो तुम वहाँ पड़ी रहोगी?

खाने के बाद प्रद्युम्न ने जाने क़ी अनुमति चाही।

देवी की आँखों में हताशा के भाव उभर आए। बोलीं, 'रात को रुक क्यों नहीं जाते। मैं रात को खीर बना दूँगी।'

प्रद्युम्न ने पूछा, 'आपको यहाँ अकेले रात में रहते डर नहीं लगता?'

'बहुत डर लगता है। इस बाँस-वन में रात को न जाने क्या हिलता-डुलता है, डर के मारे मैं दरवाजा तक नहीं खोल पाती। नींद नहीं आती, सारी रात बैठी रहती हूँ।'

प्रद्युम्न को हँसी आ गयी। सोचा, रात को अकेले में देवी को डर लगता है, इसलिए खीर का लालच देकर उसे साथ रखना चाहती हैं। बोला, 'ठीक है, रात को रहूँगा।'

देवी का चेहरा आनन्द से उज्ज्वल हो उठा।

सारी रात उसने कुटिया के बाहर खुली हवा में बैठ कर गुजार दी। देवी भी पास ही बैठी रहीं। बोलीं, 'कितनी मोहक ज्योत्स्ना है। मगर मैं डर के मारे बाहर

नहीं निकल पाती, कमरे में बैठी सारी रात गुजार देती हूँ।'

देवी की गतिविधियाँ देख कर प्रद्युम्न अवाक् रह गया। उनमें इतनी महाशक्ति थी, फिर भी वे आत्मविस्मृता थी—यह सोचकर ही वह हैरान था।

इधर-उधर की बातों में सारी रात कट गयी। सुबह हुई तो वह जाने को तैयार हुआ।

देवी ने कह दिया, 'संन्यासी आए तो एक दिन फिर आना।'

उसी दिन से प्रत्येक रात को वह देवी के अलक्षित पहाड़ के नीचे बैठकर कुटिया की तरफ ताकता रहता। उसका तरुण वीर हृदय एक भीरू नारी को अकेले वन में छोड़ देने के विरुद्ध विद्रोह कर उठा था।

दस-पन्द्रह दिन बीत गए।

कभी-कभी प्रद्युम्न सुनता, देवी देर रात तक गाना गा रही हैं। ऐसा गाना, जो धरती के मानव के गले से निकलता नहीं प्रतीत होता, बल्कि प्राणधारा के आदिम झरने से फूटता प्रतीत होता। सृष्टिमुखी नीहारिकाओं का गान, अनन्त आकाश में दिक्हारा किसी पथिक तारे का गान।

एक दिन दोपहर को किसी ने उससे कहा, 'तुम जिस गो-वैद्य को पूछा करते थे, उसे मैंने अभी-अभी देखा है। राह-किनारे तालाब में वह नहा रहा है।'

सुनते ही दौड़ा-दौड़ा वह तालाब किनारे जा पहुँचा। देखा, सचमुच वह गुणाढ्य थे, तालाब किनारे वस्त्रादि की पोटली रखकर तालाब में नहा रहे थे। वह उनकी प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी देर के बाद गुणाढ्य तालाब से निकले और कपड़े बदल लिए। वे आगे बढ़े तो प्रद्युम्न पर अचानक नजर पड़ते ही गड़बड़ा गए।

बोले, 'तुम यहाँ?'

प्रद्युम्न बोला, 'मैं यहाँ क्यों हूँ, क्या आप इसका कारण नहीं जानते?'

गुणाढ्य बोले, 'तुम्हें देखकर नहीं कह रहा हूँ, सच तो यह है कि यह काम करने के बाद मैं बेहद अनुतप्त हूँ। प्रत्येक रात्रि भयानक स्वप्न देखता हूँ—जैसे कोई कहता है, तुमने जो काम किया है, उसका दण्ड अनन्त नरक में भोगोगे। इसी कारण मैं पन्द्रह दिन से अपने गुरु उन्हीं आजीवक संन्यासी के पास गया था। उन्हीं से मैंने यह वशीकरण-मंत्र सीखा था। इस मंत्र में इतनी शक्ति है कि याद करते ही जिसे चाहूँ उसे बाँध सकता हूँ, किन्तु साथ ला नहीं सकता। मंत्र में बंधन-शक्ति तो थी, पर आकर्षण-शक्ति नहीं। इसी कारण मैंने तुम्हारा सहयोग लिया था। मुझे खुद संगीत का ज्ञान नहीं, ऐसी बात नहीं, किन्तु मैं जानता था कि तुम मेघ-मल्हार में सिद्ध हो, तुम्हारा आलाप सुनकर देवी वहाँ जरूर आएँगी। बस,

आते ही मैं उन्हें बाँध दूँगा। इसके पहले तो मुझे विश्वास ही नहीं था कि ऐसा होना सम्भव है। अनेक मंत्रों के गुण की परीक्षा करने की इच्छा से मैं यह काम करता हूँ।'

'अब?'

'अब मैं गुरु के यहाँ से ही आ रहा हूँ। उन्होंने सर्वगुणी एक मंत्र सिखाया है, जो पूर्व मंत्रों का विरोधी है। उसी मंत्र से अभिमंत्रित जल को देवी के शरीर में छिटकने से ये मुक्त तो हो जाएँगी, पर छिड़कने का कोई उपाय नहीं।'

प्रद्युम्न ने पूछा, 'उपाय क्यों नहीं?'

'जो छिड़केगा, वह हमेशा के लिए पत्थर हो जाएगा। जब दोनों तरफ से ही मेरा विनाश है तो उन्हें बंदिनी बनाकर रखना ही बेहतर है। नाराज मत हो प्रद्युम्न, सोचो, मरने के बाद तो शायद पर-जगत भी है, मगर पत्थर होने के बाद? ना, यह मुझसे नहीं होगा।'

आत्मविस्मृता बंदिनी देवी की आँखों की करुणा व असहाय दृष्टि एकाएक प्रद्युम्न के दिमाग में कौंध गयी। अगर उन पर छिड़काव न हुआ तो ये हमेशा के लिए बंदिनी बनी रहेंगी।

युगों-युगों से जो उदार उच्च प्रेरणा पहले आकर तरुणों को निर्मल प्राण में पहुँचती थी, आज भी प्रद्युम्न के प्राणों में उसका उद्वेग आ लगा। उसने सोचा, एक यह जीवन तो क्या, अगर उनके पाँव में काँटा भी चुभ जाए तो उसे निकालने में वह सौ बार अपना जीवन न्यौछावर कर सकता है।

अचानक वह गुणाढ्य की ओर देखकर बोला, 'चलिए, मैं आपके साथ चलता हूँ। वह मंत्रपूत जल मुझे दीजिएगा।'

गुणाढ्य ने विस्मय से प्रद्युम्न की ओर देखकर कहा, 'अच्छी तरह से सोच लो। यह बच्चों का खेल नहीं। यह काम...'

प्रद्युम्न बोला, 'आप चलिए तो।'

❑

वे कुटिया के लगभग निकट पहुँचे, तो गुणाढ्य ने कहा, 'प्रद्युम्न एक बार फिर अच्छी तरह सोच लो, किसी मिथ्या आशा में भूल मत कर बैठना, इससे तुम्हारा कोई उद्धार कर सके, इसकी क्षमता किसी में नहीं—देवी में भी नहीं। मंत्रबल से तुम्हारी प्राणशक्ति हमेशा के लिए जड़ हो जाएँगी, भलीभाँति विचार कर लो। मंत्र-शक्ति अत्यंत अमोघ है, किसी को रिहाई नहीं मिलेगी।'

प्रद्युम्न बोला, 'आप क्या सोचते हैं, मुझे कोई परवाह है। नहीं, बिलकुल नहीं। चलिए...।'

जब वे कुटिया के पास पहुँच गए, तब धूप काफी उतर आयी थी। देवी कुटिया के बाहर घास पर अन्यमनस्क-सी चुपचाप बैठी थीं। प्रद्युम्न को आते देखकर वे अत्यंत आनंदित हुईं। मुस्करा कर बोलीं, 'आओ-आओ! मैं तुम्हारे बारे में प्रायः सोचती रहती हूँ। तुम्हें उस दिन कुछ खाने को दे नहीं सकी थी, इसलिए मुझे बहुत बुरा लगा था। अब तुम यहाँ कुछ दिन रहो।'

दोनों को कुछ खाने को देने के वास्ते वे झटपट कुटिया में घुस गयीं।

प्रद्युम्न ने कहा, 'हाँ, मुझे मंत्रपूत्र जल दे दीजिए।'

गुणाढ्य बोले, 'तो तुम सचमुच इसके लिए तैयार हो।'

'मुझसे और कुछ कहने की जरूरत नहीं। जल दीजिए...।'

देवी ने कुटीर में दोनों को बिठाकर खाना परोस दिया।

आहारादि समाप्त हुआ तो संध्या का अँधेरा फैलने में देर नहीं रह गयी थी। बाँस-वन में छाया उतर आयी थी, लाल सूर्य फिर गाँव के ऊपर लटक आया था।

गोधूलि के आलोक में देवी के पद्म-से मुख पर अपरूप श्री खिल उठी थी।

इसके बाद वे कलसी लेकर हर रोज की तरह नीचे वाले झरने से पानी भरने चली गयीं।

गुणाढ्य बोले, 'मैं यहाँ से पहले चला जाऊँ, तब तुम मंत्रपूत्र सारा पानी देवी के शरीर में उँड़ेल देना।'

उनकी आँखों में पानी भर आया। भावावेग में उन्होंने प्रद्युम्न को आलिंगन में ले लिया। बोले, 'मैं कापुरुष हूँ, मुझमें वो साहस नहीं, अन्यथा...'

वे कुटिया में गए और द्रव्यादि उठा लिए। फिर एक संकरे रास्ते से बढ़कर बाँस-वन के किनारे-किनारे चलते हुए पहाड़ के उस पार जा पहुँचे। उसी के नीचे कुछ दूर मगध से विदिशा जाने का राजमार्ग था।

प्रद्युम्न चारों तरफ देखता हुआ बैठे-बैठे सोच रहा था, इस नीलआकाश के तले बीस साल पहले जिस माँ की गोद में जन्म लिया था, उसकी वह माँ वाराणसी में अपने घर में बैठी वातायन से संध्या के आकाश को ताकती शायद प्रवासी पुत्र के बारे में ही सोच रही होगी—माँ का चेहरा अंतिम बार देखने के वास्ते उसके प्राण आकुल हो उठे। आकाश का नवमी का चाँद उज्ज्वल हो उठा। मगध जाने के राजपथ पर पेड़ों के ऊपर एक तारा फूट पड़ा। बाँस-वन के बाँस भी तरल अँधकार में अब भलीभाँति नजर नहीं आ रहे थे।

प्रद्युम्न की आँखें अचानक अश्रुपूर्ण हो गईं।

उसी समय उसने देखा, देवी पानी लेकर पहाड़ के ऊपर चली आ रही हैं। मन्त्रपूत्र जल से भरी कलसी जमीन पर रखी थी। देवी को आते देखकर उसने

कलसी हाथ में उठा ली।

देवी कुटिया के सामने आईं। उनके हाथ में ढेर सारे अधखिले कुमुद फूल थे।

देवी ने पूछा, 'संन्यासी कहाँ हैं?'

प्रद्युम्न बोला, 'वे फिर कहीं चले गए। आज फिर लौटकर नहीं आएँगे।'

इसके बाद उसने आगे बढ़कर देवी के पाँव की धूलि लेकर उन्हें प्रणाम किया। बोला, 'माँ, अनजाने में मैंने तुम्हारे ऊपर बहुत अन्याय किया था, आज उसी का प्रायश्चित्त करना होगा। किन्तु इस कारण मैं जरा भी दुखी नहीं। जब तक मेरा ज्ञान लुप्त नहीं हो जाता, तब तक यही सोचकर मुझे खुशी होगी कि विश्व की सौन्दर्य लक्ष्मी को अन्याय के बन्धन से मुक्त करने का अधिकार मुझे मिला।'

देवी विस्मय से प्रद्युम्न को देखती रह गई।

प्रद्युम्न बोला, 'सुनिए, आप जरा अच्छी तरह याद करने की कोशिश तो कीजिए। बताइए, आप कहाँ से आई थीं?'

देवी बोली, 'क्यों, मैं तो विदिशा की राह किनारे...'

प्रद्युम्न ने एक अंजलि जल उनके सर्वांग पर छिड़क दिया।

अचानक देवी जैसे महानिद्रा से चौंक कर जाग पड़ीं।

प्रद्युम्न ने दृढ़ हाथों से एक और अंजलि जल देवी के सर्वांग पर छिड़क दिया। निमिष भर के लिए उसकी आँखों के सामने हवा में एक अपूर्व सौन्दर्य की स्निग्ध प्रसन्न हिल्लोल बह गयी। उसका सारा तन-मन आनन्द से सिहर उठा। लगा, वाराणसी में अपने घर में संध्या के समय वातायन से बाहर निहारती माँ को देख लिया हो।

❑

कुमारश्रेणी के विहार के आचार्य नीलव्रत से एक लड़की ने छोटी आयु में दीक्षा ग्रहण की। उसका नाम सुनन्दा था। वह हिरण्यनगर के धनवान व श्रेष्ठी स्यमन्तदास की बेटी थी। माँ-बाप के बहुत अनुरोध करने के बावजूद सुना था, बेटी ने विवाह करने से इंकार कर दिया था। अत्यन्त तरुण आयु में प्रव्रज्या ग्रहण करने के कारण वह विहार के सभी लोगों की श्रद्धा की पात्री बन गई थी। मगर वह विहार में किसी से मेल-जोल नहीं रखती थी, सर्वदा अपने काम में ही समय बिताती थी और सर्वदा अन्यमनस्क-सी रहती थी।

ज्योत्स्ना की रात में बिहार के निर्जन पथरीले आँगन में खड़ी-खड़ी वह अपने मन में प्रायः ही कुछ सोचती रहती। मैदान के ज्योत्स्ना-जाल को काट कर

बहुत रात गए किसी को विहार की तरफ आते देखती तो एकटक उधर ही देखती रहती। जैसे, कई दिन पहले का गया उसका प्रिय दुबारा आने को कहकर चला गया हो और उसी के आने का दिन गिन-गिनकर वह श्रांत, शांत और धीरता से पथ निहार रही हो...। प्रत्येक सुबह किसी की प्रतीक्षा में उन्मुख होकर खड़ी हो जाती, सुबह बीत जाती तो सोचती, दोपहर को आएगा, दोपहर बीत जाती तो सोचती शाम को आएगा। दिन के बाद दिन, महीने के बाद महीने, इस प्रकार कई सुबह-शामें कट गईं, कोई आया नहीं। फिर भी लड़की सोचती—आएगा...आएगा...कल आएगा...। पत्ते के शब्द से ही चौंककर वह सामने देखने लगती, सोचती—इतने दिनों के बाद शायद अब आया।

कभी-कभी रातों को वह बड़ा अद्भुत स्वप्न देखती। न जाने कहाँ के एक पहाड़ के एक घने जंगल और बाँस-वन के बीच छिपी एक अर्धभग्न पाषाण-मूर्ति खड़ी है, घनी रात में उस पहाड़ के बाँस वृक्ष में हिल-डुल रहे हैं, जंगल में सर्र-सर्र की ध्वनि गूँज रही है, ऊँचे-ऊँचे बेंतों की छाया से पाषाण-मूर्ति का चेहरा ढंक गया है, अँधकारमय अर्द्ध-रात्रि में जनहीन पहाड़ के बाँसों के बीच से उठती हवा में सुनाई देता है सिर्फ मेघ-मल्हार का आलाप।

सुबह उठकर रात के स्वप्न के बारे में सोचकर वह चकित हो जाती—कहाँ है वह पहाड़? कहाँ है वह बाँस-वन? वह भग्न मूर्ति किसकी है? इन सब दुःस्वप्नों का क्या अर्थ है?

नास्तिक

अध्ययन समाप्त करने के बाद जब लोकनाथ अपने आचार्य के पास विदा लेने पहुँचे तो उन्होंने उससे कहा था, 'एक बात तुम हमेशा याद रखना, बहुजन पर 'लोकनाथ' का नाम सार्थक करके जीवन-पथ पर आगे बढ़ना।'

असामान्य, प्रतिभाशाली व प्रियतम छात्र को विदा करने के बाद वे दो-तीन दिन तक मौन रहे थे।

मठ से निकलकर लोकनाथ किसी बड़ी राजसभा में नहीं गए। अध्यापन के प्रति उनमें कोई आग्रह नहीं था, विवाह करके संसारी बनने के प्रति भी वे नितान्त उदासीन रहे। कुछ दिनों तक निरुद्देश्य इधर-उधर भटकने के बाद अन्त में पुण्यभद्रा की निर्जन तीर-भूमि पर कुटिया बनाकर रहना शुरू कर दिया। इससे अधिकांश लोग उन्हें पागल कहते थे।

बाल्यकाल से लोकनाथ जरा अलग प्रकृति के थे। जिस दिन प्रभात का आलोक खूब चमकता, बालक लोकनाथ अपने गाँव के किनारे वाले मैदान में निकलकर अकेला घूमता, समवयसी अन्य किसी लड़के से वह मेल-जोल नहीं रखता था। संध्या के धूसर आकाश-तले गाँव के पास वाला छोटा पहाड़ जब बड़े आकाश के अंग में समाकर बादल के एक बड़े खण्ड के समान नजर आता, लोकनाथ घंटों मैदान-किनारे वन के पास एकाग्र-चित्त न जाने क्या सोचता रहता, उसके अपलक शिशु-नयन एकटक पहाड़ की तरफ टिके रहते। उसका विश्वास था, वह पहाड़ ही पृथ्वी का अंतिम छोर था। 'अच्छा, अगर मैं उसे पीछे छोड़कर चला जाऊँ दूर-दूर, बहुत दूर, और दूर, बेहद दूर, बेहद दूर-दूर-दूर, तो कहाँ जाकर पहुँचूँगा? दृश्यमान सीमाचिह्न को छोड़कर अज्ञात राज्य में!' इतनी दूर जाने की कल्पना से बालक का मन विस्मय से अभिभूत हो उठता। अपने घर व भाई-बहनों को वह भूल जाता। सिर्फ याद रहता यह कि अस्पष्ट सन्ध्या के आलोक में परिवर्तनशील मेघ-राज्य के पीछे, बहुत-बहुत दूर वह कौन-सा देश है, जहाँ ऐसा ही धूसर और मौन है चारों तरफ—उस देश की कल्पना करते ही उसका मन अवश हो जाता। उसकी बड़ी बहन रामायण व महाभारत की जो कथाएँ सुनाती थीं, वे

सारी घटनाएँ उसी देश में घटती हैं, राम-रावण का युद्ध वहाँ अब भी चल रहा है, उस देश के सीमाहीन गहन वन में गला-कटा कबन्ध राक्षस अब भी अँधेरे में भटक रहा है। लगता, जैसे वह अजूबों व विचित्रताओं का देश हो।

मगर ये सब बहुत पहले की बातें थीं। बड़े होकर लोकनाथ अत्यन्त रुक्षदर्शन व कठोर प्रकृति के इन्सान हो उठे। उनके नीरस व शुष्क पाण्डित्य के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलने के वास्ते उनकी आकृति दिन-ब-दिन लालित्यहीन होती चली गयी। जब उनके विशाल सिर के असंयत बड़े-बड़े बालों का जूड़ा और लम्बी रुक्ष दाढ़ी हवा में उड़ती तो सचमुच वे अत्यन्त भयानक प्रतीत होते थे। तीक्ष्ण इस्पात-सी एक अस्वच्छंद दीप्त नील आभा उनकी आँखों में खेलती नजर आती। किन्तु बीच-बीच में वह दीप्ति शान्त हो जाती, वे खूब सौम्य, सुदर्शन व उदार प्रतीत होते।

❑

उम्र बढ़ने के साथ-साथ लोकनाथ के बाल्यकाल का वह सुदूर-पिपासु मन धीरे-धीरे आत्म-प्रकाश करने लगा। तीस साल की उम्र पूरी होने से पहले ही दृश्यमान जगत एक प्रश्न-चिह्न बन कर उनकी आँखों के सामने झूलने लगा। जगत का सृष्टिकर्त्ता कोई है या नहीं, यही विचित्र प्रश्न लेकर लोकनाथ महादुश्चिन्ताग्रस्त और उलझनमय स्थिति में फँसकर रह गए। उनके जीवन का लक्ष्य भी विचित्र प्रकार का था। साँसारिक सुख-सुविधा पाने की कोशिशों को वे पहले से ही अवज्ञा की दृष्टि से देखते थे, यशोलाभ के प्रति भी वे पूरी तरह उदासीन हो गए थे। एक बार मठ के आचार्य के पास मगध से पत्र आया—'मठ के छात्रों में से आचार्य जिन्हें उपयुक्त समझते हों, उन्हें हाथी की पीठ पर ससम्मान बैठाकर राजधानी लाया जाएगा।' राजसभा के महाचार्य जीवन सूरि का हाल में देहांत हुआ था। आचार्य ने एक मात्र लोकनाथ को ही इस पद के उपयुक्त माना था, किन्तु लोकनाथ मगध जाने को किसी भी हालत में राजी नहीं हुए तो एक अन्य छात्र को मगध भेज दिया गया। इसके कुछ समय बाद ही लोकनाथ ने मठ का परित्याग किया एवम् एक साल के अन्दर ही पुण्यभद्रा की निर्जन तीर-भूमि पर आश्रम स्थापित किया।

तब से आज तीस साल से वे इस निर्जन मैदान के बीच जरा-सी कुटिया में अकेले रहते थे। जैन-धर्म-मण्डली की तरफ से प्रतिवर्ष निर्दिष्ट परिमाण में खाना व दो कपड़े मिल जाया करते थे। मैदान-किनारे जो कपास उगा करती थी, उसमें से वे अन्य परिधाम स्वयं बना लिया करते थे। शुरू-शुरू में एक-दो छात्रों को लेकर उन्होंने अध्यापन आरम्भ किया था, किन्तु उनके पांडित्य की ख्याति व उन्नत-चरित्र

के आकर्षण में जब विद्यार्थियों की भीड़ बढ़ने लगी तो उन्होंने तत्काल अध्यापन बन्द कर दिया।

पुण्य भद्रा के दोनों किनारों के निर्जन मैदानों में तब जगह-जगह वन हुआ करते थे। अनेक जगहों पर इन सब वनों में ऊपरी पहाड़ के शाल व देवदारू वृक्षों के बीजों का चारा था, कई जगह नाना प्रकार के कंटीले पेड़ों व जंगली लताओं का झुरमुट था। दक्षिण का पहाड़ एक उपात्यका के बीचों-बीच खड़ा था, पुण्य भद्रा की एक क्षीण धारा इसके बीच से गुजरती हुई पहाड़ के उस पार बहती चली गई थी, उसकी गैरिक जल-धारा के ऊपर हमेशा दोनों किनारों के हरे-भरे देवदार वृक्षों की काली छाया पड़ती थी।

यहीं थी लोकनाथ की कुटिया।

❑

लोकनाथ की छोटी-सी कुटिया में हस्तलिखित पोथियों का एक विशेष भंडार था। काठ के त्रिपदों को बेंत से मजबूती से बाँधकर लोकनाथ ने पोथी रखने का आधार तैयार किया था और वृहद ताल-पत्र व भोज-पत्र की पोथियों को रखने के वास्ते उन्होंने त्रिपट के बीचों-बीच कई दरारें बनायी थीं। इस त्रिपट में भरे रहते थे—षड्दर्शन, उपनिषद्, वेद, स्मृति, पुराण, अश्वलायन और आपस्तध्वादि सूत्र, पाणिनी और अन्यान्य व्याकरण ग्रन्थ, संहिता और विभिन्न कोषकारों के पोथे, प्राचीन ज्योतिष-विज्ञान की कुछ पोथियाँ इत्यादि। इसके अलावा और भी अनेक प्रकार की पोथियाँ फर्श पर इस प्रकार बिखरी रहतीं कि कुटिया में पाँव रखना भी दुष्कर हो जाता।

प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके लोकनाथ कुटिया के सामने प्राचीन नीम-वृक्ष की छाया में जाकर बैठते और एकाग्र मन से पढ़ते।

किसी-किसी दिन अवसन्न ग्रीष्म-अपरान्ह ईषतप्त हवा के साथ सद्य-खिले नीम फूल का पराग मख कर एक अपूर्व जगत की सृष्टि करती—वहाँ शुक्लकेशी आर्यभट्ट शिष्य शकटायन को नील शून्य में खड़िया से आंककर ग्रह-नक्षत्रों के संस्थान के बारे में समझा रहे हैं, जंगली पक्षियों के अश्रान्त शोर-शराबे में याास्क भाषा तत्त्व की आलोचना में व्यस्त हैं, दुर्बोध्य ज्यामिती की समस्या से घिरे वहाँ कुँचित-ललाट पाराशर एकटक वल्मीक-स्तूप को निहार रहे हैं.....। होश में आते ही लोकनाथ को यह सब भी समस्या के विषय प्रतीत होते। वरना वे क्यों इतनी देर से मन ही मन भाषा तत्त्व के आलोचक यास्क के चेहरे की कल्पना नदी में तैर रहे वन्य-हंस के चेहरे से कर रहे थे।

रात को आकाश के तारों को निहारते हुए लोकनाथ, सोचते यह सब क्या

है? प्राचीन ज्योतिर्विदों की पोथियो भी इस मामले में उनकी खास मदद नहीं करती। अन्त में उन्होंने खुद ही सोच-सोचकर स्थिर किया, नक्षत्र समूह एक प्रकार के वृहद् स्फटिक पिंड हैं। धरती को रोशनी देने के वास्ते इनका आकाश में आस्तित्व है। वे चन्द्रमा को नक्षत्रों की अपेक्षा वृहतर स्फटिक पिंड के रूप में मानते थे। उनकी मृत्यु के बाद उनकी एक हस्तलिखित पोथी में देखा गया कि वे ग्रहनक्षत्र आदि के बारे में अपना यह मतवाद लिपिबद्ध कर गए हैं। उनकी आलोक-उत्पत्ति के बारे में लोनाथ ने लिखा था कि पृथ्वी पर स्फटिक प्रस्तर की जो श्रेणी नजर आती है, महाव्योम की सारी स्फटिक उसकी अपेक्षा उत्कृष्टतर श्रेणी की होने के कारण उसके अभ्यान्तर से एक प्रकार की स्वाभाविक ज्योति निकलती रहती है। इसके प्रमाण में उनकी पोथी में ढेर सारे अंकन व ज्यामितिक रेखाएँ देखी जा सकती थीं। लेकिन लोकनाथ की प्रतिभा अत्यन्त उच्चश्रेणी की होने की वजह से वे अपने मत के प्रति आबद्ध नहीं थे, उन्होंने सभी से इन मतों को पढ़ कर विचार करने का अनुरोध किया था। वे बीच-बीच में कुछ हो जाने को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे। वे चाहते थे। उच्च ज्ञान, वरना बिलकुल मूर्खता। त्रिशंकु के स्वर्गवास पर उन्हें आंतरिक अश्रद्धा थी। एक बार उन्होंने कई वर्षों की मेहनत के बाद संख्या का एक भाष्य तैयार किया था। लिखना समाप्त हुआ तो उन्हें लगा, वे जैसी आशा करते थे, भाष्य वैस तैयार नहीं हुआ, कई कमियां रह गयी हैं, बहुत कोशिश करने के बाद भी वे उन कमियों को दूर नहीं कर पाए। एक दिन सुबह-सुबह हस्तलिखित पोथी लेकर वे पुण्यभद्रा के तीर पर जा खड़े हुए। जल-स्रोत के किनारे उगे शर-तृण थर-थर काँप रहे थे। लोकनाथ ने अनेक वर्षो की मेहनत से लिखी पोथी को एक ही बार में नदी के बीचोंबीच फेंक दिया, एक ही पल में पोथी डूब गयी। संख्या के उग्र पाण्डित्य के संघात से बेचारी वन्य-नदी की निरक्षर छाती क्षण भर के लिए भाव-विह्वल होकर रह गयी।

दिन बीतने लगे। लोकनाथ पहले की तरह अधिक समय तक एक स्थान पर टिक कर रह नहीं सके। दिन-ब-दिन उनके मन की शान्ति हरती जा रही थी। कभी-कभी वे सारा दिन कुछ नहीं खाते। बस, न जाने क्यों सिर्फ नदी-किनारे सारा-सारा दिन उद्भ्रांत की भांति भटकते रहते। रात को आकाश की ओर नहीं निहारते, यदि अचानक ऊपर देख लेते तो काले आकाश के टूटे-फूटे मेघों की दरार से जो नक्षत्र चम-चम करते, उनकी संत्रस्त दृष्टि के सामने अनभ्यस्त-पाठ अपराधी बालक छात्रो की तरह संकुचित होकर अपनी आँखों को दोनों हाथों से ढँक लेते। रात में निर्जन मैदान के चारों ओर के अंधकार में से ढेर-ढेर प्रश्न निकल आते।

भगवान उपवर्ष के वेदान्त-सूत्र में इनका उत्तर क्यों नहीं मिलता ?

लोकनाथ ने एक बार फिर अत्यन्त मनोयोग से दर्शन की पोथी पढ़नी शुरू कर दी। किंतु उनका चेहरा देखकर उस समय कोई भी भाँप सकता था कि तृप्ति की बजाय उन्हें असन्तोष ज्यादा है। दुख से मुक्ति-लाभ करने का जो सहज उपाय दार्शनिक लोग निरूपण कर गए थे, पढ़-सुन-देख-कर लोकनाथ का दुख जैसे उससे अधिक बढ़ गया था। रात को बांस के पुस्तकाधार से भोजपत्र के पातंजलि वक्रचक्र से गौतम को देखते, कपिल सगर्व व्यंग्य मुस्कान से जैमिनी की ओर कृपादृष्टि से ताकते रहते, मूर्खों के साथ एक ही आसन पर बैठना पड़ा है, यह सोचकर अपमान से व्यासदेव पोथी में दिन-ब-दिन सूखते जा रहे हैं। आधी रात को अध्ययन से थक-हारकर बोझिल मस्तिष्क से बिस्तर पर लेटते तो लोकनाथ को लगता, अर्ध-अंधकार में कमरे के अन्दर एक खण्ड-प्रलय चल रहा है। दर्शनाचार्य-गण जैसे एक-दूसरे की बात बिना सुने परस्पर महातर्क छेड़े हुए हैं, उनके भाष्यकारों व उपभाष्यकारों का वाग्-युद्ध हाथापाई की नौबत तक आ पहुँचा है। लोकनाथ से फिर सोया नहीं जाता, पुरातन भोजपत्रों की गंध से भयाक्रांत बन्द हवा में उनकी साँस घुट-सी जाती, बिस्तर से उठकर वे बाहर नीम-वृक्ष के नीचे जाकर खड़े हो जाते—किसी रात भग्न चाँद के नीचे विशाल मैदान उजाले-अंधेरे में अस्पष्ट नजर आता तो किसी रात काले अंधेरे में पथ-तले की घास में से अनजाने कीट-पतंगों का विचित्र सुर सुनायी पड़ता, वन-झुरमुटों में जुगनुओं की बुझती-जलती रोशनी दिखाई देती। नदी की लहरों से उठी ठण्डी हवा से जरा-शांति लाभ करने के साथ-साथ फिर वही सब नीरव नैश प्रश्न प्रेत की तरह उन्हें घेर लेते। इस बार वे आते अंधकार का रूप धर कर। अगर आलोक का कोई सृष्टिकर्त्ता है तो अन्धकार के एक और सृष्टिकर्त्ता का क्या प्रयोजन? आलोक का अभाव ही अगर अंधकार है तो क्या अंधकार स्वप्रकाश है? स्वयंभू? सृष्टि के पूर्व की चीज?

लोकनाथ धीर-धीरे फिर कमरे में घुसते, फिर तत्त्व समास की पोथियाँ उठा कर प्रदीप की शिखा को उज्जवल कर देते।

एक दिन उन्होंने पढ़ाई नहीं की थी, सारा दिन केवल चुपचाप आकाश की ओर ताकते हुए न जाने क्या सोचते रहे थे। जिस रहस्य को भेद करने के लिए उनका मन सर्वदा ही आकुल रहता था, उस रहस्य को भेद करने की आशा क्रमशः ही जैसे दूर होती जा रही थी। चारों तरफ अंधकार ही अंधकार नजर आ रहा था, किसी कोने से आलोक आने का कोई चिह्न नहीं था।

अनेक वर्ष पूर्व उन्हें लगता था, किसी-किसी आत्पस्थ ऋषि ने प्राचीन युग में अपने जीवन के किसी एक शुभ मुहूर्त्त में इस जीवन रहस्य का भेद पा लिया

था। भविष्य के वंशधरगण के लिए वे वही आश्वासवाणी लिपिबद्ध कर रख गए थे......'पा लिया.......।' उन्हें लगता, पहली बार जिस दिन उन्होंने उपनिषद् की एक जीर्ण पोथी के एक पन्ने में इस कथा का भेद पाया था, तब उनकी आयु आज से तीस साल कम थी। वह एक वर्षा की रात थी, स्तब्ध अंधेरी रात, निर्जन मैदान में उस दिन अशान्त बाधा-बंधनहीन हवा बिफर कर तूफानी वेग से वह रही थी। दिए की हलकी रोशनी में कुटिया में अकेले वैठे पोथी में उसका भेद पाकर पलभर के लिए लोकनाथ का समस्त शरीर सिहर उठा था। पोथी बन्द करके कमरे से बाहर ताकते हुए उन्हें लगा था, वृक्ष, दुर्वा नदी जल, सब जैसे उन्हीं की तरह सिहर उठे हैं। अब यह याद कर उन्हें हँसी आ रही थी। उम्र के उस कच्चे व भाव-प्रणव मन की ओर नीची नजरों से ताककर उनके वर्तमान समय का प्रवीण मन सकौतुक-स्नेह में रंजित हो उठा। मानव मननिर्दिष्ट पथ का अतिक्रमण करके आगे बढ़ नहीं पाता। जो कहते हैं, जान लिया, शायद वे निर्दिष्ट पथ के पथिक हैं या फिर आत्मप्रतारक मूर्ख ! क्या समझना होगा, इस बारे में वे कुछ सोचते ही नहीं। अचानक उनकी अन्यमनस्क दृष्टि दूर के नील शैलसानुलग्न प्रथम वसन्त के नवपुष्पित रक्त-पलाश के वन से जा लगी।

बहुत दिन पहले की बात थी। तब लोकनाथ की उम्र सिर्फ इक्कीस साल की थी।

'कुछ नहीं माया, मेरी लक्ष्मी। मैं, यही समझ लो, सात साल में ही आ जाऊँगा.....पढ़ाई खत्म करने में भला इससे ज्यादा क्या समय लगेगा ?

बहुत हुआ तो बस सात साल ! तुम्हें छोड़कर क्या इससे अधिक समय तक रह पाऊँगा ! क्या समझी ?'

सत्रह साल की माया ने सलज्ज होकर कहा था, 'सात साल.....इतना कम समय? हाँ, यह भला ज्यादा कहाँ ?'

लोकनाथ ने पयार से कहा था, 'वही तो मैं भी कहता हूँ, माया ! सात साल हमारे लिए कोई ज्यादा तो नहीं।'फिर माया के चेहरे को भरी नजरों से देखकर कहा था' 'क्यों, मैं ठीक कह रहा हूँ न, माया ?'

माया ने अपनी हँसी दबाकर कहा था, 'हाँ, ठीक कहते हो, सात साल कोई ज्यादा नही। सिर्फ सात साल—सुबह से शाम हुई नहीं कि सात साल पूरे।'

लोकनाथ अप्रतिभ होकर बोला था, 'ओहो, तुम तो बुरा मान गयी। सुनो माया, ऐसा नहीं है माया ! मैं कह रहा था....मेरे कहने का अर्थ था.....।'

जिस माया की अभय देती स्निग्ध आँखों ने उन्हें प्रवास के पथ पर सखी की तरह आगे बढ़ाया था, वह खुद आँसुओं में डूबकर खो गयी थी। आज

लोकनाथ के प्रवीण हृदय में कहाँ है उस माया का स्थान, यह हम नहीं जानते। हाँ, यह जरूर भान होता है कि पहले वाले मनोभाव आज के लोकनाथ में नहीं थे। जीवन की तुच्छ चीजों में उन्हें जरा भी आसक्ति नहीं।

मठ में रहने के दौरान ही लोकनाथ का मन बदल गया था, वे माया को भुल गए थे, जीवन के सुखों के प्रति घृणा करना सीख गए थे। उनके जीवन में सिर्फ अनुसंधित्सु ऋषि-दार्शनिको का महत्त्व रह गया था। वे जिस जगत में पहुँच गए थे, वहाँ तुच्छ माया के लिए कोई स्थान नहीं था, वहाँ तो मन के आकाश में सिर्फ एक विराट रहस्यमय दार्शनिक हृदय का छा गया था, मूर्ख लोग ही सामान्य चीजों में आनन्द पाते हैं चिरन्तन प्रश्नपुंज ऐसे लोगों को कभी आलोड़ित नहीं करता।

फिर भी कभी-कभी कोई असावधान पल यक्ष-भंगकारी तिशाचर-सा अचानक घेर लेता। उनका बीस वर्षीय यौवन माया के चेहरे की सलज्ज मुस्कुराहट से ही तो प्रेरित हुआ था और उनकी प्रसन्न ललाट की महिमा स्निग्ध हुई थी।

कई साल बाद मठ में रहने के दौरान लोकनाथ ने सुना था, माया ने विवाह नहीं किया था, किसी मठ में प्रवज्या लेकर भिक्षुणी बन गयी थी। इस बात को भी अरसा बीत गया था, इसके बाद उसकी कोई खबर उन्हें नहीं लगी थी। कहीं भी जाकर रहे, उन्हें परवाह नहीं।

संध्या की छाया मैदान में चारों तरफ घनी हो आयी थी। कुटिया जाते-जाते लोकनाथ ने आकाश की ओर ताका, मन-ही-मन बाले—हे अदृश्य, मैं दार्शनिकाचार्य लोकनाथ हूँ—अज्ञानी, मूर्ख व साधारण इन्सानों जैसी मेरी मुक्ति-प्रणाली या मानसिक धारा नहीं। मैं जानना चाहता हूँ, यह कार्यस्वरूप दृश्यमान जगत किस कारण से प्रसूत है। साधारण लोग जिसे ईश्वर कहते हैं, उसके मूल में कुछ है या नहीं। ग्रन्थों की बात मैं नहीं जानता, क्योंकि उनके प्रमाण पर मुझे बिल्कुल आस्था नहीं। मैं तुमसे प्रमाण चाहता हूँ, नहीं जनता कि तुम्हें सुनने की क्षमता है या नहीं, हो तो बताना....। बरगलाने की कोशिश मत करना, मैं बरगलने वाला नहीं।

महामण्डली के मठ में प्रधान दार्शनिक वैभायिकपंथी माधवाचार्य रहते थे। लोकनाथ ने उनके पास जाकर अपना प्रश्न रख दिया। माधवाचार्य समझाने बैठे तो पहले मुक्ति क्या है, मुक्ति कितने प्रकार की है, मुक्ति और निर्धारण के बीच कुछ प्रभेद है या नहीं, आदि इतने विस्तृत रूप से बताने लगे और इतने शास्त्र-वाक्य उद्धृत करके अपने मत को परिपुष्ट करने की चेष्टा करने लगे कि लोकनाथ पांडित्य-प्रिय होते हुए भी यह सोचने को बाध्य हुए, मुक्ति का स्वरूप बूझ तो लिया, मगर फिलहाल तो वे माधवाचार्य के वागृजाल में आ फँसे हैं।

नहाते वक्त एक दिन उन्हें लगा, उनकी पीठ में जैसे किसी की दुम आ लगी

है। उन्होंने जल्दी से पीछे की ओर घूमकर पानी में हाथ डालकर देखा, दुम नहीं थी, एक जलज पौधे का पत्ता शरीर से आ लगा था। पौधे को उन्होंने खीच कर उखाड़ लिया। देखा, वह एक शैवाल पौधा था। यह पौधा नदी में उन्होंने पहले भी देखा था, पर उस पर कभी गौर नहीं किया था। इस बार आँखें गड़ाकर देखा कि पौधे के तने का जो अंश उनके शरीर में गुदगुदी करता हुआ आ लगा था, वह पानी के नीचे का अंश था। उस अंश के पत्ते लता के पत्तों की तरह थे, किंतु पानी के ऊपर के अंश के पत्ते पान की तरह। जल के ऊपर के अंश के पत्ते ऊपर तैरते थे, नीचे के अंश मे पत्ते उस तरह के होते तो स्रोत के आघात से टूट जाते, किंतु बालों के झुण्ड की तरह होने के कारण वे जल को बाधा नहीं देते, जल उनके बीच से भली-भाँति कतराकर निकल जाता। स्रोत की गति जिस ओर होती, पत्ते उस ओर घूम जाते। लोकनाथ अत्यन्त अन्यमनस्कभाव से नहाकर लौटे तो लगा, जैसे कोई एक चीज उन्होने प्राप्त कर ली हो।

उन्हें लगा, एक ही तने के ऊपर-नीचे दो तरह के पत्ते होने के मूल में प्रकृति के अन्तस में छिपी एक चैतन्य-सत्ता जैसे भली-भाँति नजर आ गई हो—वरना इस नगण्य जलज पौधे के पत्र-विन्यास में यह निपुणता कहाँ से आई? पानी में कहीं टूट-फूट न जाए, इस कारण किसने इसके पानी के नीचे के अंश के पत्ते लता के पत्तो की तरह बना दिए ? लोकनाथ को एक बात और याद आई। कई दिन पहले उन्होने अत्यन्त अधीर भाव से जागतिक शक्ति से उसकी चैतन्य सत्ता के अस्तित्व के सम्बन्ध में एक प्रमाण चाहा था, उन्हीं वही प्रार्थना क्या इस प्रकार पूर्ण हुई थी?.

न्याय-युक्ति की दृष्टि से यह सिद्धान्त उन्हें इतना विपद्जनक महसूस हुआ कि यह बात जबरदस्ती मन से दूर कर दी। साधारण मनुष्यों की तरह इतनी जल्दी वे किसी सिद्धान्त तक नहीं पहुँच सकते। फिर भी वे मन-ही-मन दिन-ब-दिन अन्यमनस्क-से होते चले गए। उस जलज पौधे के सूखे तने-पत्ते कुटिया के सामने पड़े प्रायः ही नजर आते। पोथी-पत्र आजकल वे कम ही खोलते थे। बस, वे नदी के किनारे-किनारे घूमते रहते—जहाँ जंगली वृक्षों के हरे पत्तों की छाया स्रोत के पानी में आ पड़ती, ऊँची-ऊँची घास के फूल ढेरों की तादाद में खिलकर पानी की धारा को आलोकित किए रहते, पेड़ों के झुरमुटों के तल में जलचर पक्षी अपने अण्डे गुप्त रूप से छिपा कर रखते। लोकनाथ अधिक समय इन्हीं सब स्थानों में न जांने क्या देखने हुए भटकते रहते। उनकी कुटिया के सामने के मैदान में एक तरह की छोटी घास के कोमल-कोमल सादा फूल भारी तादाद में खिलते। देखा, कि लोकनाथ इन फूलों के सम्बन्ध लोकनाथ को लगता से सब फूल एक ही गठन

के हैं। पाँच पंखुड़ियों के बीच एक बिन्दु। विशाल मैदान में ऐसे फूल दो हजार, दस हजार, दो लाख, दस लाख, खिले होते। लोकनाथ यहाँ से वहाँ से फूल उठाकर देखते, सबका एक जैसा गठन, वही पाँच पखुड़ियों के बाद एक बिन्दु।

लोकनाथ की प्यास असीमित हो उठी। ढ़ेर सारे प्रश्न उनके मन में उठते—असाधारण, भयानक और विभीषक प्रश्नदैत्य। लोकनाथ कहते, 'मुझे समझाओ, हे चैतन्यमय कारण शक्ति, मुझे और भी समझाओ।' कुछ दिन गुजरने के बाद सचमुच उन्हें असह्य यातना होने लगी। एक विशाल घनांधकार-मय गुप्त सहस्य-जगत ने द्वार-पार्श्व के संकीर्ण छिद्र-पथ से क्षीण-सी आलोक रेखा जैसे उनकी आँखों में फेंकी थी और उनका बुभुक्षु मन सारा आलोक एक साथ देखने के लिए छटपटा उठा था। रात को उन्हें नीद नहीं आती। काले आकाश में आँखें गड़ाकर कहते, 'मेरी आँखें खोल दो हे महाशक्ति, मेरी आँखें खोल दो।'

इस बीच उन्होंने एक बार फिर देखा—एक पतंगे ने एक अन्य छोटे पतंगे को अपने शरीर के रस से धीरे-धीरे अचेत कर दिया। बड़े पतंगे को हाथ में उठाकर गौर से देखा तो पता चला, पतंगे के शरीर में विषाक्त रस बाहर निकलने का बड़ा ही सुन्दर व सुनियोजित बंदोबस्त है....

लोकनाथ के मन में पल भर के लिए फिर अंधकारा छा गया। निठुर ध्वंस व हिंसा का यह कैसा कुशल आयोजन ! मूर्ख भक्ति-शास्त्रकारों, क्या यही तुम्हारे ईश्वर की दयालुता है ?

वसंत के बाकी दिन एवं सारी ग्रीष्मऋतु इसी प्रकार कट गयी। अंत में एक दिन कौतुहलप्रद एक ऐसी घटना घटी कि लोकनाथ के दुख, व्याकुलता और संदेह का एक तरह से उपसंहार हो गया। वह समय था आषाढ़ माह का प्रथम सप्ताह। कई दिनों से बारिश नहीं हुई थी, असह्य गर्मी से मैदान की घास जलकर विवर्ण हो गयी थी, हवा आग की तरह बेहद तृप्त। दोपहर बाद हवा खूब जोरों से बहने लगी, थोड़ी देर में आकाश में मेघ घिर आए। नदी के विशाल मोड़ पर बड़ी-बड़ी घास के बीचों-बीच लेटे हुए लोकनाथ पूर्व दिशा में नवीन वर्षा के मेघ-स्तूपों का क्रिया-कलाप एकटक देख रहे थे। एकाएक उनके बाएँ हाथ की मध्यमा व अनामिका उँगली के बीच में किसी ने काट दिया ! उधर देखकर हाथ खींचते हुए उन्हें नजर आया, एक शंक चूर्ण साँप फन उठाकर उनके हाथ को पुनः काटने का उपक्रम कर रहा था, पर अगले पल ही सिर नीचा करके वह घास में विद्युत वेग से रेंगकर अदृश्य हो गया। लोकनाथ ने बिना सोचे-समझे अदृश्यमान साँप की पूँछ पकड़ने को झपटा मारा, मगर हाथ में घास का झुण्ड आ गया और सांप आँखों से ओझल हो गया।

लोकनाथ ने जल्दी से पोशाक से कपड़ा फाड़कर हाथ और बाँह को बाँध लिया। बंधन कसा हुआ नहीं था, काफी ढीलाढाला था। उन्हें याद आया, श्वेत आकंद का मूल सर्प-दंश की महौषधि है। वे श्वेत आकंद की खोज में मैदान में इधर-उधर गए, मगर आकंद कहीं नजर नहीं आया। हाथ जैसे अवश हुआ जा रहा था। शायद विष ऊपर चढ़ रहा था। लोकनाथ सम्भव-असम्भव सारे स्थानों में तलाशने लगे। सर्प-दंश की दो-चार अन्य औषधियाँ याद करने की कोशिश की। मगर न कही कुसुम फूल के बीज मिले और न ही रक्त-चंदन की छाल आदि। इधर-उधर कुछ देर तक खोजते-खोजते लोकनाथ को लगा, अब वे खड़े नहीं रह सकेगें, आँखों के आगे अंधकार छा रहा था। वे नीचे बैठ गए—असह्य दंशन-विष उनके सर्वांग में जैसे फैलता जा रहा था।

धीरे-धीरे उनके मन का निभृततम अंश किसके आलोक से जैसे आलोकित होने लगा.....आसन्न मरण का वज्रकठोर निर्मम कराल रौद्र सुर दूरश्रुत मुक्त स्रोत गिरि-निर्झर की ताल में जैसे उनके कान में मुक्ति का गीत गा रहा हो....तुम्हारी पाषाण-काया अब टूटेगी...तुम्हारी आँखों के बंधन खुलेंगे...।

हे अनन्तदेव, महाव्योम की अनन्त शून्यता के पार किस सूदूरतम, अप्रकल्प राज्य के ज्योतिःसिंहासन से तुम अपनी व्याकुल दीनतम प्रजा को देखते हो ? तभी शायद उस दिन पानी में मेरा पथ प्रदर्शन किया था।

उस दिन तुम्हें न पहचान पाया और न तुम्हारे पथ को। आज लगता है, तुम्हें समझ सका हूँ। हृदय के अन्तर तुम्हीं हो मेरी आत्मा, पृथ्वी की अपेक्षा महान, स्वर्ग की अपेक्षा महान, सर्वभूत की अपेक्षा महान....मेघ जिस प्रकार औषधियों के लिए उपजीवा है, वैसे ही तुम मेरे प्राणाधार के उपजीवा हों तुम मेरे प्राण की आवाज सुन पा रहे हो ? ठीक है, तब तुम मुझे पथ दिखाते हुए ले चलो। देव, इस अध राज्य के उस पार, उस दिगन्त सीमा के उस पार, जीवन महा-समुद्र के उस पार। ....कहाँ है तुम्हारा चिरविकसित ज्योतिः प्रभात। कहाँ देख पाऊँगा दैन्य-मुक्त ज्ञान-संपदा का अपराजित आयतन।

अचानक लोकनाथ की मरणाभिभूत दार्शनिक बुद्धि सिर उठाकर बोल पड़ी, तुम्हारी विचार शक्ति चली जा रही है, विष की यातना जब तुम्हारी समस्त इन्द्रियों को अवश कर रही है, तब तुम्हारे ऐसे विचार ! यह क्या ! मन का यह तरल भाव तो दुर्बलता का चिन्ह है, मन से दूर करो इसे....

लोकनाथ कुछ भी तय नहीं कर पाए। उनका मन अब युद्ध करने के काबिल नहीं रहा था....अफीम के नशे की तरह मरण-तन्द्रा उन पर क्रमशः हावी होने लगी....

न जाने कहाँ के दो बालक-बालिका एक छोटे से गाँव के सीवान में जंगली खजूर के वृक्ष-दर के तले खजूर बटोरकर खाते हुए भटक रहे थे। समय के दीर्घ पाषाण-अलिद की दूरतम सीमा से उनके छोटे-छोटे पाँवों की अस्पष्ट होती जा रही थी। उस पार वे दोनों क्रमशः एकसार होने जा रहे थे।

एक ग्राम्य वन के मधु-वृक्ष की डाल से दोनों मधु फूल तोड़ते जा रहे थे, बालिका को अच्छा रसाल फूल मिलता तो वह बालक के हाथ में रख देती, 'अरे, यह देखो, कितना मीठा है, लो, तुम खाकर देखो।'

नील-व्योम-पथ से बड़ी डील-डौल के श्वेत दाढ़ी वाले ज्योतिर्मय ऋषि-लोग चले जा रहे थे—उसके बीच में से न जाने किसने पीछे घूमकर अपने साथियों के बीच प्रस्ताव रखा, 'हे साथियो, हमारा कमण्डल जिससे पूर्ण है, आओ, उसे फेंककर दुबारा नया पानी भर लें...इतने दिनों के भ्रमण के बाद मीठे पानी के उत्स का पता चला है।' उनके कमण्डल से काला-काला-सा न जाने क्या गिर रहा था।

पथ के मोड़ पर एक दिन मेघ भरी दोपहरी को लड़की को खूब मारा है...उसके बिखरे-बिखरे बाल चेहरे पर छितरा गए हैं.....न जाने किसने कपड़े खींचकर फाड़ डाले हैं....वह फूट-फूटकर रोती हुई कह रही है—'मुझे तूने क्यों मारा? इस मुहल्ले में आयी हूँ?' इसलिए अब कभी नहीं आऊँगी—देख लेना। अब कभी जो आऊँ।

लोकनाथ की मरणाहत दृष्टि विराट विश्व पर उसी प्रकार से मुग्ध-सी टिकी रही, जिस प्रकार बहुत वर्ष पहले के शैशवकाल में गाँव के सीवान वाले मैदान में उनकी अज्ञानी शिशु आँखें टिकी रहतीं......लगभग अंधकारमय जगत फिर एक विराट प्रश्न का रूप धर उनके चेहरे की ओर जिज्ञासु नजरों से देखने लगा....प्रश्न का कोई उत्तर उनसे नहीं मिल सका.....

●

उमारानी

बसंत आ गया है न ? दक्षिणी हवा बह-बह सर्दी को भगा रही है। आकाश ऐसा नीला हो गया है कि लगता है, ऊपर उड़ रही चीलों के पंखों पर नीला रंग लग जाएगा। ऐसे समय उसकी बात मुझे खूब याद आ रही है। उसी की बात बताता हूँ।

मेडिकल कालेज से निकलकर कुछ समय तक सरकारी नौकरी खोजने में निष्फल रहने के बाद जिस माह मैं एक चाय-बगान की डाक्टरी पाकर गौहाटी चला गया था, उसी माह मेरी छोटी बहन शैल ससुराल में कालरा से मारी गयी थी। शैल को मैं बहुत प्यार करता था, अपनी अन्य बहनों के साथ बचपन में कई बार मारपीट की थी, पर शैल के शरीर पर मैंने किसी दिन हाथ नहीं उठाया था। शैल का विवाह जैसोर जिले के एक गाँव में हुआ था। शैल कभी उस गाँव में नहीं गई थी उसका पति उसे लेकर कलकत्ता में रहता था। उसका पति पहले पटसन की दलाली करता था, उसके बाद किसी आफिस में न जाने कौन-सी नौकरी करने लगा था। जहाँ शैल के पति ने डेरा लिया था, उसके पास ही मेरे मामा का घर था। एक गली में ही आमने-सामने। इस डेरे में वे शैल के विवाह से बहुत पहले से रहते थे और शैल का विवाह भी मामा के घर से ही हुआ था।

उस दिन शाम से कुछ पहले बगान के मैनेजर के बंगले से लौटा था, चपरासी ने कुछ चिटिठ्याँ मुझे थमा दीं, उन्हीं में से एक चिटठ्ी से शैल की मृत्यु का समाचार मिला बंगले के चारों तरफ झाड़ियाँ और पेड़ हवा में लहरा रहे थे। मेरी आँख के सामने चाय-बगान, दूर की ढलवाँ पहाड़ियाँ, दो नम्बर बगान के मैनेजर के बंगले का सफेद रंग देखते-देखते एकाकार हो गए और अंधकार में परिणत हो गए।

रोशनी जलाकर चुपचाप कमरे में बैठा रहा। बाहर की हवा खुले दरवाजे-खिड़कियों से अन्दर आने लगी। शैल ! क्या कभी उसे भुला पाऊँगा। कलकत्ता से छुट्टी पाकर जब घर जाता, बेचारी शैल मेरी आवभगत में बेकरार हो जाती। मेरे घर पहुँचने से पहले ही शैल मेरे लिए बेर, कच्ची इमली, पका कटहल जमा करके

रख देती, किस्म-किस्म के मसाले तैयार कर कागज की पुड़ियो में भर देती। मेरे घर पहुँचते ही उसकी आनन्दमय व्यस्तता और भाग-दौड़ का अन्त नहीं रहता। गर्मी की छुटिटयों में घर पहुँचते ही मुझे बेल का शरबत पिलाने के लिए दूसरे की पेड़ी से चोरी-छिपे बेल तोड़ लाती और बाद में अपनी व दूसरों की डाँट भी सहती। मुझे जुराबें बनाकर देगी, इसलिए उसने बुनाई सीखी। यह पहले की शैल थी, आज की नहीं। जितनी दूर नजरें जाती हैं, उतनी दूर पीछे मुड़कर देखता हूँ तो न जाने कितनी घटनाओं, कितनी ही छोटी-छोटी सुख-दुख की स्मृतियों व कितने ही खेल-कूदों के साथ शैल जुड़ी हुई है। वह आज इस आकाश के बीचों-बीच जगमग करते सप्तर्षि मंडल की तरह दूर हो गई।

अगले दिन छुट्टी लेकर देश चला गया। घरके सभी लोगों को सांत्वना दी। आह, देखा मेरा बहनोई बेचारे बड़ा दुखी था। शैल के विवाह को मात्र तीन साल ही बीते थे। इसी अवधि में वह बेचारा शैल को बहुत चाहने लगा था। उसे बहुत समझाने-बुझाने की कोशिश की। शैल ने बुनाई सीखते ही बहनोई के लिए एक मफलर बुना था, वह अधबनी अवस्था में पड़ा हुआ था, बहनोई उसे दिखाने मेरे पास ले आया, उसे देखकर मेरे मन में न जाने कैसी जरा-सी ईर्ष्या पैदा हो गई। मैंने सोचा, मेरा जुराब बुन देने के वास्ते बुनाई सीखकर सबसे पहले पति का मफलर क्यों बुना, तभी तो आज वह नहीं हैं।

फिर गोहाटी वापस आ कर यथा रीति नौकरी करने लगा। देश से आकर बहनोई के साथ शुरू-शुरू में खूब पत्राचार चला। बाद में वह सब धीरे-धीरे बन्द हो गया। उसका कोई विशेष समाचार नहीं रखता था, हाँ, बीच-बीच में मामा के पत्रों से पता चला कि उसने लोगों के बहुत अनुरोध करने के बावजुद दुबारा विवाह नहीं किया था। सूना था, वह आज तक अविवाहित है।

इस तरह विदेश में कई दिन बीत गए। कोई खास आकर्षण न होने की वजह से देश ज्यादा नहीं जा पाता था। मा-बाप को मरे अरसा बीत गया था, सो मेरी निगाहों में देश-विदेश एक समान था। चाय बगान के काम में एकरसता थी। सुबह क्लिनिक में बैठा लगातार कुलियों का हाथ देखता था और मशीनी-यंत्र की तरह दवाई लिख देता था। उनका रोग एक जैसा होता था—सादा ज्वर, हिल डायरिया, ज्यादा से ज्यादा काला ज्वर, एकाध टायफाइड के केस तेज नमीनिया जब हाथ में विशेष काम न होता तो पहना वरना आप्टीकल या आलोक-तत्त्व की चर्चा करता। बंगले का एक कमरा इसी उद्देश्य से डार्करूम में परिणत कर लिया था। कलकत्ता से प्रति माह अनेक अच्छे-अच्छे लेंस और आप्टीकल की पुस्तकें मँगवाता था।

तीन साल और गुजर गए।

इस बीच मामा के एक पत्र से मालूम हुआ कि बहनोई ने दुबारा विवाह कर लिया है। वह बेचारा दूसरों के अनुरोध व जबरदस्ती को टाल नहीं सका था। मैं उसे कोई दोष नहीं दे सका। शैल के प्रति उस का प्यार अकृत्रिम था, तभी तो इतने दिन तक वह जूझता रहा।

उस बार आषाण महीने के शुरू में देश गया तो सबसे पहले मामा के घर जा पहुँचा। मेरे मन में आप्टीकल से संबद्ध इतने सवाल थे कि एक विशेषज्ञ से परामर्श लेना बहुत जरूरी था। मेरा एक मित्र उन दिनों विलायत से आकर प्रेसीडेंसी कालेज में वस्तु-विज्ञान का अध्यापक नियुक्त हुआ था, उसके साथ इस विषय में बातचीत करने के लिए ही एक तरह से मेरा कलकत्ता आना हुआ था। उसके यहाँ आना-जाना शुरू किया। उसने खूब उत्साह दिखाया, मैं आप्टीकल को लेकर एकदम उन्मत हो उठा था।

एक दिन सुबह के समय बरामदे में बैठा पढ़ रहा था, अचानक मेरी आँखें सामने के घर की खिड़की पर टंग गईं। उसी में मेरे बहनोई का निवास था। देखा, कोई एक अपरिचित लड़की कमरे में कुछ काम कर रही थी। मुझे सिर्फ उसकी दोनों सुडौल बाँहें नजर आ रही थी, और लग रहा था उसकी पीठ खूब सुगठित है।

थोड़ी देर के बाद ही बस कमरे में मेरे बहनोई की बहन टूनी ने प्रवेश किया। टूनी का विवाह हो चुका था, शायद वह ससुराल से आई हुई थी। मैं जब से गोहाटी से आया था, तब से उनके घर नहीं गया था। टूनी को देखा तो बुलाकर पूछा, 'टूनी, यह लड़की क्या नई बहु है ?'

'हाँ, दादा'

'जरा मुझे दिखाओ।'

टूनी ने लड़की को बुलाकर न जाने क्या कहा, फिर उसे खिड़की के पास बुलाकर लाई और उसका घूँघट खोल दिया। अच्छी तरह देख नहीं सका। गली के इस पार हमारे मामा के घर ने ऊपर उठकर गली के उस पार के मकानों को डार्करूम-सा बना दिया था, दिन में भी उनमें रोशनी नहीं जा पाती थी। अच्छी तरह देख न सका तो बोला, 'भई, मुझे तो कुछ नजर नहीं आया।'

टूनी हँस पड़ी, बोली, 'मैं जानती हूँ, आप वहाँ से कुछ नहीं देख पाए। फिर आँखों पर यह चश्मा भी तो लगा रखा है।' कुछ सोचकर टूनी जरा गंभीर होकर बोली, 'आप जबसे आए हैं, तब से तो एक बार भी हमारे घर नहीं आए। आज दोपहर के समय आएँगे, दादा ?'

दोपहर के समय उनके घर गया। घर में घुसते ही याद आया, चार-पाँच साल पहले भाई-टीक के अवसर पर शैल के निमन्त्रण पर इस घर में आया था, उसके बाद दुबारा आना नहीं हो सका। दालान पार करके कमरे में घुसते ही घर की लड़कियों ने घेर लिया। उनके साथ बातचीत खत्म हुई तो टूनी बोली, 'दादा, बहू देखने चलिए।'

दूसरे कमरे में पहुँचा, टूनी नई बहू का घूँघट खोलकर बोली, 'इनके सामने घूँघट निकालने की जरूरत नहीं है, भाभी। ये तुम्हारे दादा हैं।'

लड़की ने सर पे आँचल रखकर मेरे पाँव छू लिए। वाह, लड़की तो खूब है। रंग बहुत गौर-वर्ण, और चेहरा बेहद सुन्दर। लम्बे काले सघन बाल। सुघड़ देह-यष्टि। आयु लगभग चौदह-पन्द्रह साल की होगी। टूनी की माँ ने बताया, 'लड़की का बाप पश्चिम में नौकरी करता है, वहीं हमेशा रहते हैं। उसकी यही एक बेटी है, और बाल-बच्चा नहीं। पहले की जान-पहचान थी, सो यहीं रिश्ता तय हो गया।'

लड़की पाँव छू कर उठ खड़ी हुई तो मैंने उसका हाथ पकड़ कर पास खींच लिया। बाएँ हाथ से थोड़ा घूँघट खोलकर बोला, 'मेरे सामने क्यों लजाती हो मुन्नी, मैं तो तुम्हारा दादा हूँ। तुम्हारा नाम क्या है ?'

उसकी आँखों से संकोच हट गया। उसी पल से मैंने समझ लिया, यह लड़की मेरे बहन हो गई। उसने अत्यन्त नम्र स्वर में उत्तर दिया, 'उमारानी।'

मैं बोला, 'अच्छा, हम कब तक यूँही खड़े रहेंगे ? आओ उमरानी, इस चौकी पर बैठकर तुम्हारे साथ थोड़ी गप-शप करूँ।'

मैं चौकी पर उसके साथ बैठ गया, बहुत देर तक उसके साथ इधर-उधर की ढेर सारी बातें कीं।

मैंने पूछा, 'मायके से आकर मन उदास है न ?'

उमारानी जरा-हँसकर चुप रही ।

मैं बोला, 'तुम्हारे पिताजी कहाँ रहते है ?'

'मऊ'

मैंने मऊ का नाम कभी नहीं सुना था। मैंने पूछा, 'मऊ ? यह कहाँ है, जरा बताओ तो ?'

'सेंट्रल इण्डिया।'

'तुम्हारे पिताजी वहाँ क्या करते है।'

'कमिश्नरी में काम करते हैं।'

'तुम्हारे और कोई भाई-बहन नहीं है न।'

'नहीं। मेरे बाद एक बहन हुई थी, वह जन्मते ही मर गई। उसके बाद कोई नहीं हुआ।'

घर छोड़कर बहुत दूर से आई थी, सो सोचा, माँ-बाप की बात निकालने से उसे दुख हो रहा है। मैंने बात का विषय बदलने के लिहाज से पूछा, 'तुम पढ़ना-लिखना जानती हो, उमारानी?'

'मैं वहाँ लड़कियों के स्कूल में पढ़ती थी, वहाँ बँगला नहीं पढ़ाई जाती थी, सो पिताजी ने स्कूल से नाम कटवा दिया, इसके बाद घर में पिताजी से पढ़ती थी।'

'बँगला किताब पढ़ लेती हो?'

'हाँ।'

मैं उमारानी के बातचीत करने के अंदाज से बहुत खुश हुआ। वह आँखें धरती में झुकाए इस तरह शांत भाव से बातचीत कर रही थी कि मुझे बहुत भला लग रहा था। मैंने स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा, 'वाह, तू तो बड़ी लक्ष्मी लड़की है। अच्छा, तुमसे फिर कभी बातें करूँगा। अव मैं चलता हूँ।'

खड़े होते ही उमारानी ने सिर पर आँचल रखकर मेरे पाँव छू लिए।

मैंने उससे कहा, 'घर में खूब शान्ति से रहना, उमारानी। कोई शरारत मत करना, वरना दादा खबर लेंगे। समझ गई न।'

उमारानी ने हँसकर सिर झुका लिया।

❑

पाँच-छह महीने के बाद पूजा की छुट्टियों में मामा के घर फिर पहुँचा। अष्टमी के दिन सारे दिन के परिश्रम के बाद बेहद थकान का अहसास हुआ तो एक कमरे में खाट पर जाकर सो गया। मेरे मामा के घर में पूजा का आयोजन होता था। सारे दिन मेहमानों का स्वागत करना और उन्हें खिलाना-पिलाना आदि कई तरह के काम करने पड़ते हैं! रात को उठकर खाना खाया। मेरे छोटे भाई ने खाने के समय कहा, 'दादा, तुम तो खूब सोए। दीदी आरती के समय आई थी, आपको देखने आपके कमरे में गई थी। आपको सोया देखकर उन्होंने जगाने के लिए आपके पाँव छुए थे। आप उठे नहीं। इस पर वे सब चली गई। वे शायद परसों ससुराल चली जाएँगी। आप कल उनके यहाँ जरूर जाइएगा। आपके साथ मुलाकात न होने की वजह से उन्हें बहुत दुख हुआ था।'

मैं नींद की खुमारी में ठीक से कुछ समझ न सका तो पूछा, 'दीदी, मतलब?'

'सामने वाले घर की।'

'उमारानी?'

'हाँ! दीदी टूनी, दीदी, ये सब आरती के समय आई थी।'

उमारानी की बातें मुझे खूब याद थीं। उसका भक्तिभाव-पूर्ण नम्र और मधुर व्यवहार मुझे बड़ा अच्छा लगा था। इसलिए उसे भूला नहीं था, इस बार चाय-बगान जाकर लड़की की बातें खूब सोचता रहा था। उसके अगले दिन सुबह उठकर काम-काज में से वक्त निकाला और जरा देर के लिए उनके घर जा पहुँचा। बाहर किसी को न पाकर मैं एकदम से रसोईघर में घुस गया। टूनी की माँ बोली, 'आओ बेटे, बहुत दिनों बाद आए, क्या इस घर का रास्ता ही भूल गए।'

मैंने समयोचित एक कैफियत दे दी। उमारानी मछली छील रही थी। मुझे देखकर वह रसोईघर से बाहर निकल गयी। थोड़ी देर बाद हाथ धोकर आयी और मेरे पाँव छूकर प्रणाम किया। टूनी की माँ बोली, बहूरानी, सतीश को दालान में ले जाकर बिठाओ। यहाँ भला धुएँ में कैसे बैठेगा?'

दालान में पहुँचा तो कहीं से टूनी आ पहुँची, बोली, 'यह क्या! दादा आए हैं? हमारा भाग्य! भाभी दादा-दादा कहकर मरी जा रही है! बस, हमेशा यही पूछती थी कि दादा पूजा की छुट्टियों में घर आएँगे न। पर दादा को हमसे मिलने की फुरसत कहाँ? चार-पाँच दिन हो गए आए हुए, पता नहीं यहाँ आने में इनको क्या तकलीफ थी।'

मैं जरा अप्रतिभ हो गया। उमारानी के घुँघराले बालों पर हाथ फेरकर बोला, 'क्यों रानी बिटिया, तो दादा को भूली नहीं थी?'

टूनी की बातों से लड़की शर्मा गयी थी। वह चेहरा झुकाए मेरे कपड़े का कोना हाथ में लेकर चुपचाप हिलाती रही—मैं दालान में एक चौकी पर बैठा था और उमारानी नीचे मेरे पाँवों के पास।

मैंने पूछा, 'शचीश कह रहा था, दीदी सोमवार को चली जाएगी। क्या यह सच है ?'

उमारानी ने सिर झुकाए ही उत्तर दिया, 'पिताजी ने चिट्ठी भेजी है, एकादशी के दिन ले जाएंगे। किंतु आज भी तो वे आए नहीं।'

उसका कंठ-स्वर जैसे जरा-सा काँप गया।

उसका विरही बाल-हृदय माँ-बाप के लिए व्याकुल हो उठा है, यह समझते ही मैंने सान्त्वना देते हुए कहा, 'आ जाएँगे, आज तो नवमी ही है। अच्छा, यह तो बताओ रानी, कलकत्ता कैसा लगा?'

उमारानी ने जवाब दिया, 'बहुत अच्छा।'

मैंने उसके झुके चेहरे की ओर ताककर कहा, 'बिलकुल झूठ ! तुम्हें कभी अच्छा नहीं लगा, दादा को खुश करने के लिए 'अच्छा' कहने से बात नहीं बनेगी

कहाँ पश्चिमी की हवा-पानी और कहाँ यह धूल-धूआँ—अच्छा लग ही नहीं सकता।'

उमारानी जरा-सा हँसकर चुप रही।

मैंने पूछा, 'पश्चिम में पूजा होती है ?'

वह बोली, ठीक यहाँ की तरह नहीं। वहाँ के लोग कुछ ऐसा जरूर करते हैं, जो यहाँ से काफी मेल खाता है। हाँ, वहाँ इन दिनों रामलीला की खूब धूम होती है।'

मैं वहाँ से उठकर चला तो उमारानी ने पाँवों में झुककर एक बार फिर प्रणाम किया। मैं बोला, 'रानी, मैं जितनी बार आऊँगा-आऊँगा, क्या उतनी बार तुम मुझे प्रणाम करोगी ?'

उमारानी संभवतः पहली बार मेरी ओर आँखें उठाकर बोली, 'कल शाम को आएँगे, दादा ?'

इससे पहले उमारानी ने कभी मुझे दादा कह कर नहीं पुकारा था। उसके मुँह से दादा का संवोधन सुनकर मैं बहुत आनन्दित हुआ। बोला, 'कल तो विजया-दशमी है, आऊँगा ही।'

अगले दिन विजया दशमी थी। शाम को उनके घर गया। सभी को प्रणाम किया। टूनी आकर बोली, 'आप दालान के बगल वाले कमरे में जाइए। वही भाभी जी हैं।'

मैं उस कमरे के द्वार पर पहुँचा तो अंदर एक बड़ा सुन्दर दृश्य देखा। मैं अंदर जाने के बजाय द्वार पर ही खड़ा रहा।

देखा, कमरे में चौकी पर मेरा छोटा भाई शचीश बैठा है, उसकी उम्र बारह-तेरह साल थी। उसके पास उमारानी खड़ी थी, जो टेबल पर रखी एक प्लेट में से खाने की चीज उठाकर उसे खिला रही है। दोनों की पीठ मेरी ओर थी।

ऐसे कोमल स्नेह से उमारानी शचीश के कंधे पर अपना बायाँ हाथ रखकर स्नेहमयी बड़ी दीदी की तरह अपने हाथ से उसके मुँह में खाने की चीज बढ़ा रही थी कि लगा, आज शैल जिंदा होती तो इससे अधिक नहीं कर पाती। उमारानी के प्रति स्नेह-रस से मेरा मन सिक्त हो गया। मैं कुछ देर तक द्वार पर चुपचाप खड़ा रहा, फिर अंदर प्रवेश करते हुए उमारानी से बोला, 'छुप-छुप कर छोटे भाई को खिलाने से ही बात नहीं बनेगी, जरा यह तो बताओ, दादा को क्या खिलाओगी, रानी?'

बेचारी उमारानी का चेहरा लाल हो गया लज्जा से। वह अचानक यों गड़बड़ा गयी कि बात-बात में प्रणाम करने वाली आज प्रणाम करना भी भूल

गयी। न जाने क्या बुदबुदा कर वह सिर झुकाए रही। मैं उसकी ओर ताकता हुआ चुपचाप खड़ा रहा। आज मैंने उसे समझ लिया था, उसका भाई-बहन-विहीन निर्जन हृदय किसके लिए प्यासा हैं, यह समझना शेष नहीं रहा। लगा, जगत में भाई-बहन का जरा-सा स्नेह पाने के लिए व्याकुल ऐसे अनेक हृदयों को आज मैंने अपने बड़े भाई की उदार स्नेह छाया तले आश्रय दिया है। तृप्ति के अहसास से मेरा मन भर उठा।

उसी समय टूनी कमरे में आयी और मेरे आगे टेबल पर मिठाई से भरी थाली रखकर बोली, 'जरा मुँह मीठा कर लीजिए।'

मै बोला, 'आओ टूनी, सभी को मिठाई दी। उमारानी लज्जा से एकदम आकुल ! माथे पर बूँद-बूँद पसीता उभर आया था। बेचारी लज्जा के मारे बेदम होकर कहीं मर ही न जाए, यह सोचकर मैंने उसका घूँघट पूरी तरह खोल दिया, 'मैं दादा हूँ न, मेरे सामने लज्जाने की क्या तुक, पगली। तू मेरी लक्ष्मी-सी छोटी बहन है न........'

खाना-पीना खत्म हुआ तो बाहर के दालान में जाकर टूनी की माँ के साथ बाते करने लगा। थोड़ी देर के बाद वह रसोई-घर में चली गयीं। कुछ क्षणोपरांत मैं उठकर जाने को हुआ तो उमारानी पास आकर खड़ी हो गयी।

मैंने पूछा, 'रानी, आज प्रतिमा-विसर्जन की सवारी देखी कि नहीं ?'

'ऊपर वाले कमरे की खिड़की से देखी थी, खूब मजा आया।'

'बहुत प्रतिमाएँ थीं न ?'

'हाँ, बहुत थीं—बड़ी-बड़ी।' फिर पल भर चुप रह मेरी ओर देखकर बोली, 'दादा, कल आएँगे न ?'

'यह भला कैसे बताऊँ ! समय मिला तो आऊँगा। जल्दी वापस भी तो जाना है, बहुत-से काम निपटाने है।'

'आप क्या जल्दी ही वापस जाएँगे ?'

'हाँ, छुट्टियाँ कम हैं, पूर्णिमा के बाद ही चला जाऊँगा।'

उमारानी चेहरा झुकाए चुप रही।

बोला, 'फिर तुम भी तो यहाँ ज्यादा दिन नहीं हो।'

'हाँ, शायद पिताजी कल आ जाएँ।

उसे सान्त्वना देने के लिहाज से बोला, 'फिर तो कहने ही क्या। ये दो दिन भी देखते-ही-देखते कट जाएँगे।'

पल भर चुप रहकर बोली, 'जाने से पहले क्या यहाँ नहीं आ सकेगे दादा।'

बोला, जरूर, क्यों नहीं आ सकूगा। जरूर आऊँगा.....'

छः-सात दिन के वाद गोहाटी रवाना हो गया। इन कुछ दिनों मे विभिन्न कामों की व्यस्तता के मारे चारों ओर घूमता ही रहा था। शचीश से सुना था, उमारानी का पश्चिम जाना हो नहीं सका। किसी कारण उसके पिताजी उसे लिवाने आए ही नहीं। शचीश बीच-बीच में बताता–'दादा, जाने से पहले एक दिन दीदी से जरूर मिलना। वे आपके बारे में प्रायः चर्चा करती हैं।'

इच्छा हँसते हुए भी गोहाटी जाने से पहले उमारानी से मिल पाना संभव नहीं हुआ।

गोहाटी में इस बार वहुत दिन रहा। उमारानी शुरू-शुरू में मुझे खूब याद आती थी। कुछ दिनों के बाद उसकी याद धूमिल पड़ गयी और क्रमशः उसे भूल ही गया। कुछ दिनों के बाद गोहाटी की नौकरी छोड़ दी। सिलचर, दार्जिलिंग आदि अनेक चाय बगानों में घूमा। दो-एक अस्पतालों में भी काम किया। हमेशा एकान्त में ही समय बिताता। बंगले में अकेले रहते-रहते ऐसा स्वभाव बन गया था कि लोगों की भीड़ और शोर-गुल मुझसे सहा नहीं जाता। यहाँ संध्या के पहाड़ की दीवार की देह पर कुसुम बिखेरता सूर्यास्त था, चाय के झुरमुटों को चारों तरफ से घेरता हुआ गोधूली का अंधकार था, गहन रात्रि का स्तब्ध-सा एक गम्भीर भाव था और वृक्षो की डाल-डाल व पत्ते-पत्ते से निकलता हवा का विचित्र स्वर था। यही सब मुझे पसन्द था, इन्हीं से मेरे मन को शान्ति मिलती थी....। बैठकखाने को दुनिया भर के बड़े-बड़े ज्ञानियों की पुस्तकों से सजा रखा था। इन्हीं की ज्ञानियों की प्रतिभा से तो हम जैसे साधारण इन्सानों को दृष्टि प्राप्त होती है।

प्रायः सात-आठ साल यों ही गुजर गए, तब एक बार फिर कलकत्ता गया। सोचा, कलकत्ते में ही प्रैक्टिस आरम्भ करूँगा। मामा के घर ही जाकर डेरा डाला। पता चला, सामने वाले घर में अब बहनोई नहीं रहता, वे लोग पाँच-छह साल पहले देश चले गए थे। मैंने कई महीने कलकत्ता में ही बिताए। प्रैक्टिस कोई बहुत जम गई हो, ऐसा नहीं था। ऐसा भी नहीं था कि भविष्य में ही जमने वाली हो। ऐसी हालत में एक दिन मामा के घर के ऊपर वाले कमरे में बैठा पढ़ रहा था कि लगा, अन्दर किसी ने प्रवेश किया है। आँखें उठाकर देखा तो पहले पहचान नहीं सका। फिर पहचान लिया–वह टूनी थी। बहुत दिनों से उसे देखा नहीं था। उसका चेहरा काफी बदल गया था। उसे देखकर मैं आश्चर्यचकित हुआ ही, आनंदित भी हुआ।

टूनी ने बताया, वह अपने पति के साथ पाँच-छह दिन से कलकत्ता आई हुई है और कहीं अपने रिश्तेदार के यहाँ ठहरी हुई है। आज यहाँ वह सबसे मेल-मुलाकात करने आई थी। इधर-उधर की बातचीत के बाद मैंने पूछा, 'सुरेन आजकल कहाँ है ?'

टूनी बोली, 'छोटे भैया आजकल इलाहाबाद में कहीं नौकरी करते है, वहीं रहते हैं।'

'उमारानी कैसी है ?'

टूनी जरा देर चुप रही। फिर बोली, 'दादा, यह लम्बी कहानी है। आप यहाँ आए हुए हैं, यह मैं जानती थी । एक तरह से मैं आपको पूरी कहानी सुनाने ही यहाँ आई हूँ।'

'जरा बताओ तो, क्या बात है ? वह ठीक तो है न?'

'वह ठीक है या नहीं, यह आप खुद ही सोचिए उस साल पूजा के अवसर पर आप यहीं थे, तब भाभी के पिताजी के आने की बात थी, यह तो आपको याद ही होगा। उन्होंने लिखा था कि छुट्टी नहीं मिली,इसलिए नहीं आ सके, अगले महीने आकर उमा को ले जाऊँगा। फिर महीने भर में ही खबर आई कि वे कालरा में मारे गए। भाभी बाप का शोक मनाकर वापस आई तो उस पर एक और मुसीबत टूटी कहीं उमा रानी की माँ भी तो.... ।'

'सुनिए तो...। उसकी माँ कहाँ रही थीं ? वह तो उमारानी का विवाह होने से पहले ही मर चुकी थीं। इधर भैया उसके साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रखते थे। वे जहाँ नौकरी करते हैं, वहीं रहते हैं, भाभी चाँपा-पुकुर के मकान में अकेली रहती है, भैया चिट्ठी-पत्री भी नहीं भेजते। भाभी बेहद शान्त व अन्तर्मुखी स्वभाव की है। वह मुँह खोलकर कभी कुछ बोलती नहीं, मगर उसके चेहरे की तरफ देखते ही छाती फट पड़ती है। नारियों का यह कौन-सा कष्ट है, यह आप नहीं समझ पाएँगे, दादा। जब तक माँ थीं, भाभी को कोई कष्ट नहीं होने दिया। मगर अब तो वे भी दो साल पहले मर चुकीं। घर में रहती हैं सिर्फ बुआ।'

उस शान्त छोटी-सी लड़की के ऊपर से इतना बड़ा तूफान गुजर गया, यह सुनकर मुझे बेहद कष्ट हुआ। पूछा, 'सुरेन के इस व्यवहार का मतलब क्या है ?'

'यह तो वही जानें। यों सुना है कि वे कहते हैं, यह शादी जोर-जबरदस्ती से हुई थी, जबकि उनका मन करने को नहीं था। यही सब। बड़े भैया भी देश वाले घर में नहीं रहते हैं। घर में रहती है सिर्फ बुआ। सो अब तो वहाँ कोई नहीं रहा, जो भाभी के दिल का दर्द समझे और उससे दो बोल बोलकर सान्त्वना दे। बुआ साथ में रहती जरूर है, मगर उनका रहना-न-रहना एक समान है।'

वह कुछ देर तक चुप रही, फिर बोली, 'आपसे एक बात कहूँ, दादा। आप एक बार उससे जरूर मिलने जाएँ। आपको वह किन निगाहों से देखती है, यह मैं बता नहीं सकती, दादा। उस बार चाँपा-पुकुर गई थी, भाभी बोली थी, मेरे दादा के बारे में कोई खबर है, ननदी। आप यहाँ-वहाँ भटक रहे हैं, यह सुनकर तो

उसका रोना ही नही थमा था। बीच-बीच में जब भी उसके पास गई हूँ, कोई ऐसा दिन नहीं बीता था, जब आपकी बात न की हो। बोलती, भगवान ने मेरे भाई के अभाव की पूर्ति कर दी जो मुझे दादा और शचीश मिले। आज वह चिट्ठी लिखती है तो आपकी खोज-खबर लेती है। वह तो एक ही अभागी है, किसी से भी उसे सनेह नहीं मिला। आपके पाँव पड़ती हूँ दादा, आप उससे जरूर मिल लें, आपके देखकर उसका आधा दुख दूर हो जाएगा।'

छत के आँगन से धूप उतर गई थी, बगल वाले मकान की छत की पुंडेर पर बैठा एक कौआ कर्कश स्वर में चीख रहा था।

मैंने पूछा, 'सुरेन क्या बिलकुल घर नहीं जाता ?'

वह बोली, 'वह एक तरह से न जाना ही कहलाएगा, दादा। साल में मुश्किल से एक-दो बार जाते है, वो भी एकाध दिन के वास्ते। जाते भी हैं तो किस कारण ! किश्त लेने—उस समय जिससे जो खजाना मिलेगा, उसे वसूलते।'

इसके बाद इधर-उधर की कुछ बातें करके टूनी चली गई। उस दिन शाम को सिनेट-हाल में एक विख्यात वैज्ञानिक का भाषण था, वे कैम्ब्रिज से आए थे हमारे विश्वविद्यालय में भाषण देने। भाषण का विषय जितना चित्ताकर्षक था, उतनी ही दुर्बोध्य थी वक्ता की युक्ति-प्रणाली। आरम्भ होने के समय छात्रों से हाल भरा होने के बावजूद भाषण की बोझलता के कारण प्रायः सब उठकर चले गए। हाँ, कुछ चिपकू किस्म के छात्र तब भी हाल के विभिन्न हिस्सों में विस्मित से बैठे थे। वक्ता ख्यातनामा अध्यापक था—रायल सोसायटी का फेलो। उनकी व्याख्या की मौलिकता से प्रभावित होकर उनके भाषण से सभी अत्यन्त आकृष्ट हो गए थे। विश्वविद्यालय की विशेष पोशाक में वह सौम्यमूर्ति अध्यापक सत्य-दृष्टा ऋषि-सा प्र[illegible] [illegible] था....। पर भाषण सुनते-सुनते मेरा मन भाषण के विषय से हटकर कहीं बहुत दूर भटका जा रहा था। कलकत्ता के ईंट-पत्थर के राज्य से बहुत दूर—वहाँ, जहाँ मेरी अभागिन बहन निःसंग जीवन यापन कर रही थी। बीच-बीच में हाल के खुले द्वार से ज्योत्स्ना से आलोकित बाहर के वातावरण की तरफ निहारता तो उमारानी का बाल्य चेहरा दिमाग में कौंध-कौंध पड़ता। साथ ही याद आती उसकी वही विनती-भरी दृष्टि, एक अरसे के बाद बाप से मिलने जाने का वह करूण आग्रह। बहुत दिनों के बाद आज उसका प्यार से दादा-दादा पुकारना बहुत याद आ रहा था। सचमुच, उस लड़की ने कभी किसी से स्नेह नहीं पाया था। आज विज्ञान की गम्भीर तत्त्व-मीमांसा का रस मेरे स्नायु-मण्डली में प्रविष्ट होकर जब समस्त शरीर में पुलक का संचार कर रहा था, ऐसे समय आनन्दातिरेक के आलम में अपनी अभागिन स्नेहंचिता बहन के एकाकी जीवन की

कल्पना करके मेरा हृदय रो पड़ा। बाहर की दुनिया में इतना-कुछ हो रहा है और वह अपने कमरे के कोने में पड़ी दिन-रात आँखों से आँसू बहा रही है। क्या कोई नहीं है, जो उसके पास दुनिया की खुशियाँ ले सके।

बाहर निकला तो गोल-तालाब के ऊपर चाँद उठ आया था, मगर आकाश धुएं से आच्छादित था, सो ज्योत्स्ना की शुभ्र-महिमा पूरी तरह खिल नहीं सकी थी। मेरा मस्तिष्क भाषण के नशे से तब भरपूर था, तालाब के पानी के किनारे घास के बीच-बीच में खिले हुए सफेद फूल मेरी आँखों के सामने एक नई मूर्ति गढ़ रहे थे। किन्तु त्रियोदशी के ऐसे वर्ण-धुले जूही फूल की तरह ज्योत्स्ना भी धुएँ का जाल काटकर बाहर न आ सकने की वजह से व्यर्थता के दुख में किस कदर विवर्ण हो गई है, यह देखकर मुझे सिर्फ एक ही बात याद आ रही थी—यह ज्योत्स्ता, ये फूल, यह त्रियोदशी.....इस बार सब व्यर्थ है, सब मिथ्या है।

घर आकर सोचते-सोचते, इतने दिन विभिन्न कामों की भीड़ में मैं अपनी जिस बहन को खो बैठा था, उसी के पास जाने को मैं तड़प उठा।

इसके कुछ दिनों के बाद कलकत्ता से निकल पड़ा, यह सोचकर कि उमारानी से मिलूँगा। सर्दी उस दिन कुछ घट गई थी। फुटपाथ पर चलते वक्त दक्षिणी हवा जोरों से बहकर मेरे शरीर में उत्पात मचाने लगी।

अगले दिन दोपहर के प्रायः दो बजे उनके स्टीमर-स्टेशन पर उतरा, वहाँ से उनका गाँव प्रायः पाँच कोस की दूरी पर था। पैदल जाने के अलावा कोई उपाय नहीं था—यात-वाहन का बिलकुल अभाव।

इस देश में पहले कभी आया नहीं था, पूछते-पूछते रास्ते पर बढ़ता चला गया। कच्चे रास्ते के दोनों तरफ मैदान थे, बीच-बीच में लताओं-पत्तों के बड़े-बड़े झुण्ड। किसी-किसी झुण्ड के हरे-हरे सिरे पर खिले हुए अनजाने सफेद फल मैदानों में मिट्टी के टीलों की आट में उगे पेड़ नजर आ रहे थे। मैदान को पीछे छोड़कर गाँव के बीचों-बीच कच्ची राह से गुजरा तो उस पर जगह-जगह फूलों की नक्काशी बिछी हुई थी। कहीं-कहीं तो जंगली बेर और शहतूत के पेड़ों के झुण्ड थे। तेज धूप में पेड़ों के पत्तों-तले और सघन झुरमुटों में खाली स्थानों पर बैठा छोटे-छोटे पक्षियों का दल चूं-चूं का शोर मचा रहा था। कभी-कभी किसी जंगल के पास से गुजरता तो कुछ अज्ञात बनफूलों की सुगंध बिखरी होती, ऐसी सुगन्ध कि उनके आगे बहु-मूल्य एसेन्स की खुशबू भी हार मान ले। पाँवों की आवाज सुनकर सूखे पत्तों के ढेर पर खर-खर करते दो-एक खरगोश कान खड़ा करके झुरमुट से दौड़कर उस झुरमुट में घुस जाते। शिमूल-फूल के पेड़ दक्षिणी हवा के प्रथम स्पर्श से आवेश-विधूरा तरुणी की तरह रोमांचत हो उठे थे।

गाँव का काफी हिस्सा पार करने के बाद एक छोटा तालाब नजर आया। गाँव में जब घुसा तो अंधेरा छाने लगा था। आस-पास के घरों में रोशनियाँ जल रही थी।

किस घर में रोशनी जलाकर बैठी है मेरी स्नेहशील बहन? किस गृहस्थ के आँगन का अंधेरा आज उसके सेवा-परायण चरणों के शान्त-मधुर स्वर से दूर हुआ है?

एक जगह राह में कुछ बच्चों को देखकर मैं उनके पास गया और पूछताछ की तो उनमें से एक बोला, 'आइए, मैं आपको उस घर तक पहुँचा दूँ।' थोड़ी दूर तक चलते के बाद वह लड़का बगल के एक पतले रास्ते पर बढ़ गया। फिर एक बहुत पुराने मकान के सामने जाकर बोला, 'यही है, उनका घर। आप जरा ठहरिए, मैं अन्दर जाकर बोल आता हूँ।'

थोड़ी देर के बाद वह एक वृद्धा के साथ घर में से बाहर निकला। वह वृद्धा से बोला, 'ये कलकत्ता से आए हैं नानी-माँ, आपके मकान के बारे में पूछ रहे थे, सो मैं दूसरे मोहल्ले से इन्हें ले आया हूँ।'

वृद्धा मेरे निकट आई और मुझे अच्छी तरह से देखकर पूछा, 'तुम्हें पहचाना तो नहीं भैया, कहाँ से आ रहे हो तुम ?'

मैंने अपना नाम बताया–परिचय देने को उद्यत हुआ।

वृद्धा बोल पड़ी, 'मुझे परिचय देने की जरूरत नहीं, भैया।' क्योंकि मेरा यहाँ आना-जाना नहीं, इसलिए उसने मुझे कभी देखा नहीं तो भला पहचानेंगी कैसे ? मैं यहाँ आकर बाहर खड़ा रहा, इससे उन्हें दुख हुआ। आते ही मैं सीधे घर में क्यों नहीं घुस पड़ा, मैं तो घर का बंदा ठहरा, सो बाहर खड़े रहकर पुकारना-बुलाना क्यों? आदि...

उसके साथ घर में प्रविष्ट हुआ। दिमाग में सिर्फ एक ही बात घूम रही थी–आठ साल.... आज आठ साल के बाद उससे मिलूँगा। कौन जाने, उमारानी कैसी है, कैसी दिखती है ? आज बिलकुल अप्रत्याशित रूप से मुझे देखकर उसे जो आनन्द होगा, उस आनन्द का परिमाण मैं जरा-जरा महसूस कर रहा था। हृदय में उसकी प्रतिध्वनि मुझे साफ सुनाई दे रही थी। आज इस वक्त उसके स्नेह-मधुर हृदय के संस्पर्श को अनुभूत कर पाऊँगा, उसके काले बालों से भरे-पूरे सिर पर हाथ फेरकर स्नेह कर पाऊँगा, उसका मीठा सम्बोधन 'दादा' सुन पाऊँगा–यह सोच कर आनन्द से मेरा अंग-प्रत्यंग सिहर रहा था।

देखकर साफ पता चला, कभी इनकी स्थिति अच्छी थी, अब चारों तरफ टूटे-फूटे दरो-दीवार थे, जहाँ-तहाँ घास-फूस उग आई थीं बाहरी दालान पार कर

अन्दर आँगन के दरवाजे पर पाँव रखते ही वृद्धा बोल पड़ी, 'ओ वहू, बाहर आकर देखो तो कौन आया हैं ?'

'कौन है, बुआ ?' कहती हुई वह एक कमरे से हाथ में दीपक लिए आई, अस्पष्ट आलोक में देखा, उसका आधा चेहरा घूँघट से ढँका था। घूँघट के कोने से बिखरे बाल कानों के बगल से निकल कर कंधे पर झूल रहे थे, शरीर पर अधमैली साड़ी थी, चेहरा इकहरा और अस्वस्थ-सा था। यही थी वह उमारानी। उसे देखते ही समझ गया कि वह पहले से अधिक अस्वस्थ हो गयी है और उसका ललाट भी आगे निकल आया है।

कुछ पलों तक उमारानी मुझे पहचान नहीं सकी, जव पहचाना तो हाँफती-सी बोल पड़ी, 'दादा...?'

कोई और बात उसके मुँह से नहीं निकली, किसी तरह दीपक को नीचे रखा और आगे बढ़कर मेरे पाँवों पर आ पड़ी।

मैंने उसे उठाया, उसके चेहरे पर एक अपूर्व भाव था। लगा, आनंद, विस्मय, और रूठने आदि के सारे भावों की रंगोली जैसे उसके चेहरे पर उभर आई हो। वृद्धा बोलीं, भैया, तुम इधर आए नहीं, सो बहू तो 'दादा' बोल-बोलकर बेहाल थी। कितना तो दुखी रहती थीं, कहती थो, 'कलकत्ता रहती थी तो बीच-बीच में दादा को देख लेती थी, अब इतनी दूर भला वे क्यों मिलने आएँगे?' बहू, जरा सतीश को हाथ-मुँह धुलाकर पानी-वानी दो, इन्हें जरा ठण्ड होने दो, बड़ी दूर से चले आ रहे हैं।'

हाथ-मुँह धुलाने के बाद उमारानी मुझे एक कमरे में ले गई। मैं इस हाल में एकाएक यहाँ आ पहुँचूँगा, यह बात जैसे उसे संभावना की सीमा से भी परे की लग रही थी। तभी तो बेचारी के मुँह से बोल तक नहीं फूट रहे थे। उसके आवेग को सामान्य स्थिति में लाने के विचार से मैं भी बिना कुछ बोले खामोश था। थोड़ी देर तक हम दोनों चुप रहे, फिर उमारानी बोली, 'दादा, इतने दिनों के बाद अब जाकर मेरी याद आई?' मैंने पहले की तरह उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'रानी यह सही है कि विभिन्न कामों में उलझा रहने की वजह से आ नहीं सका, मगर यह मत सोचना कि तुम्हें भूल गया था। क्यों री, तेरा चेहरा एकदम सूख-सा गया है, कहीं बीमार-वीमार तो नहीं थी ?'

आठ साल पहले वाली उसी लड़की की तरह सिर झुकाकर जरा-सा हँसकर चुप रही।

पूछा, 'अच्छा रानी, मैं आऊँगा, यह तूने कभी सोचा था ?'

उसकी दोनों आँखों में पानी भर आया, बोली भला कैसे सोचती दादा। मैं

कभी आप लोगों को देख पाऊँगी या सेवा-सत्कार कर पाऊँगी ऐसी मेरी किस्मत होगी, यह सोचना मेरे बस में ही कहाँ था?'

उसके जो अस्त-व्यस्त बाल घूँघट के आस-पास विखरे पड़े थे, उन्हें संवारता हुआ बोला, 'तभी तो तेरे पास आया हूँ। तू क्या सोचती है, तुमसे मिलने की इच्छा मुझे नहीं थी ?' लगता, तू सोचती थी कि दादा का दिल पत्थर का हैं।'

वह बोली, 'अब समझा, बाप आएँगे, इसी से मेरी बायीं आँख फड़फड़ा रही थी। शाम को घाट पर गई थी तो आँख का फड़फड़ाना थम ही नहीं रहा था। बुआ से बोली तो कहने लगीं, लड़कियों की बायीं आँख फड़फड़ाना अच्छा सगुन है।'

मैं बोला, 'मेरी याद तो तुझे बिलकुल नहीं थी, क्यों, सच है न रानी ?'

वह एकाएक कोई उत्तर न दे सकी, उसकी आँखों से अनवरत पानी बरस रहा था। मैंने पूछा, 'हाँ, यह तो बताओ, सुरेन को घर से गए कितने दिन हो गए?'

उसने सिर झुकाकर उत्तर दिया, 'लगभग आठ महीने।'

'चिट्ठी-पत्री लिखता है ?'

उत्तर में उसने गर्दन हिला दी, 'हाँ।'

उसके चेहरे के भवव देखकर समझते देर नही लगी कि मैंने उसकी दुखती रग पर हाथ रख दिया हैं रूमाल निकालकर मैंने उसकी आँखों के आँसू पोंछ दिये। कितनी रातें उसने इसी तरह आँखों में आँसू भरकर गुजारी हैं, इसका हिसाब तो किसी के पास भला क्या होगा। हाँ, आकाश का गहन अंधकार और चारों ओर फैले पेड़ों से निकलने वाला झींगुरों का स्वर इसका साक्षी जरूर था।

उमारानी ने पूछा, 'दादा, आप कहाँ रहते हैं ?'

मैं बोला, 'पहले विभिन्न स्थानों में घूमता था, अब तय किया है कि कलकत्ता में ही रहूँगा।'

'आपने विवाह कर लिया, दादा ?'

'नहीं, री। विवाह की इतनी जल्दी क्या है ? एक दिन कर लूँगा...?'

वह छोटी लड़कियों की तरह रूठकर बोली, 'वाह, यह भी कोई बात हुई ? लगता है, आपने इसी तरह हमेशा जोगी बनकर भटकने का इरादा कर रखा है। यह नहीं चलेगा दादा, इसी साल आपका विवाह कर दूँगी।'

मुझे हँसी आ गई, बोला, 'मेरा विवाह तू करेगी ?'

'हाँ, और नहीं तो क्या ! इसी आषाढ़ महीने में ही।'

'यह तो ठीक है। पर मेरा तो कोई घर-द्वार है नहीं, विवाह कर लिया तो बहू को रखूँगा कहाँ?'

'वाह, जगह की क्या कमी। मैं बहू को यहाँ रख लूँगी। दोनों मिलकर अच्छी

घर-गृहस्थी चला लेंगी।'

मैं जरा गम्भीरता से बोला, 'पर मैं अपनी जन्म-पत्री तो लाया नहीं हूँ, आषाढ़ के दिन अभी बचे हों तो.....।'

'लड़की की जन्म-पत्री तो ऊपर के कमरे में है, दादा। अब आप खाना-वाना खा लीजिए, कल सुबह इस बारे में बातें होंगी।'

मैं आश्वस्त हुआ। कुछ बोलने ही जा जा रहा था, कि उमारानी बोल पड़ी, 'जाऊँ, आपके खाने का बंदोबस्त करूँ कल से पेट में भात गया नहीं, आपका मुँह एकदम सुख गया है, दादा।'

उसके अगले दिन भोर में उठकर देखा, उमारानी सुबह-सुबह नहाने के वास्ते जाने की तैयार कर रही थीं उस दिन सुबह ठण्ड कुछ ज्यादा पड़ रही थी। उमारानी के शरीर की ओर ताका, उसके शरीर में कुछ नहीं रह गया था। रात ठीक से देख नहीं पाया था, अब आठ साल पहले की उस स्वास्थ्य-श्री-सम्पन्न लड़की के साथ आज की इस नितान्त बीमार लड़की की तुलना करके मेरी छाती में हूक-सी उठी। उससे पूछा, 'अरे रानी, इतनी सुबह नहाने के वास्ते जानें की क्या जरूरत हैं ?'

वह बाली, 'जरा सुबह-सुबह नहाने न जाऊँ तो वक्त पर खाना कैसे बनेगा, दादा? रात को तो आपको ठीक से खिला नहीं सकी।'

'छोड़ो भी। मुझे आठ बजे तक खाना मिल ही जाना चाहिए, इसका कोई मायने नहीं। इतना सबेरे तुम्हें नहाने नहीं जाने दूँगा।'

उमारानी ने घड़ा नीचे उतारकर रख दिया।

बुआ बोलीं, 'तुमने बोला तो सुन रही है, भैया। वरना यह तो ऐसी पगली है कि माघ महीने के द्वादसी के दिन सुबह-सुबह नहाने जाती है। किसी की सुनती ही नहीं। कहती हूँ, बहू, तबियत ठीक नहीं, इतनी, भोर को पानी में मत उतरना। मगर यह सुनती नही, कहती हूँ, बुआ, कल ही आपको एकादशी थी, जरा सुबह-सुबह काम-काज नहीं निपटाऊँगी तो आपको वक्त पर दो कौर कैसे खिलाऊँगी।'

उस दिन दोपहर को उनके ऊपर वाले कमरे में लेटे-लेटे कोई एक पुस्तक पढ़ रहा था। उमारानी आकर चुपचाप दरवाजे के पास खड़ी हो गई। मैं बोला, 'क्या बात है, रानी। अन्दर आओ न।'

मैं उठकर बैठ गया। वह दीवार से पीठ टिकाकर खड़ी रही। देखा, उसका शरीर पहले कहीं अधिक बीमार लग रहा था। मगर चेहरा प्रतिमा की तरह दमक रहा था। उसकी उम्र लगभग बाईस-तेईस साल की होगी, मगर चेहरा अब भी किसी तेरह साल की लड़की की तरह कोमल था। बातचीत चलाने के लिए भूमिका-स्वरूप बोला, 'आज तो बहुत गर्मी है। नहीं ?'

उमारानी बोली, 'हाँ, दादा। मैंने सोचा, शायद आप सोए होंगे। लगता है, आप दिन में सोते नही।'

'कभी-कभी सो लेता हूँ। आज नहीं सोऊँगा। आओ, यहाँ बैठो, बातें करेंगे।'

उसे पास बिठाया। उसके बालों की हालत देखकर समझ गया कि वह बालों की देखभाल नहीं करती। चेहरे के आस-पास रूखे-सूखे बालों का झुण्ड वेतरतीबी से बिखरा पड़ा था, बालों का रंग जरा भूरा हो चला था। रात की तरह इस बार भी उसके बालों के संवारते हुए बोला, 'तुम्हारा शरीर तो बेहद गिर गया है। शादी के बाद उन दिनों तुम कैसी थी! क्या अब बुखार रहने लगा है ?'

हँसकर उसने मेरी बात टाल दी। मैं बोला, 'रानी, यह अच्छी बात तो नहीं। मैं यहाँ से जाकर तुम्हारे वास्ते औषधि भेज दूँगा। उसे नियम से खाना। वरना खामोख्वाह कष्ट सहती रहोगी।'

जरा-सा थम कर वह बोली, 'तो दादा, मैं सचमुच आपके विवाह की कोशिश करूँ न? बताइए।'

मुझे उसकी बात सुनकर बड़ा कौतुक हुआ। क्या यह अबोध लड़की नहीं जानती कि वह जो प्रस्ताव रख रही है, उसे कार्य-रूप में परिणत करना उसकी क्षुद्र शक्ति से बाहर है ?

बोला, 'क्यों फालतू बोलती है, रानी।'

कई पल गुजर गए, अपनी बात का जवाब नहीं पाया तो पीछे मुड़कर उसकी ओर देखा, बच्चे डाँट सुनकर जिस तरह निराशा से ताकते हैं, उसकी आँखों में यही भाव उतर आया था। लगा, मुझसे मुझसे भूल हो गई। उमारानी उनमें से थी, जो कभी भी अपनी तरफ से दिल की बात कह नहीं पाती, दूसरे की इच्छा में अपनी इच्छा विलीन कर स्रोत के पानी के शैवाल की तरह ही जीवन बिता देती हैं। स्नेह-सुख से भरकर वह अबोल-तबोल बक रही थी, सो इसके साथ अत्यंत सतर्क हो कर बात करनी चाहिए, हवा लज्जावती लता के साथ जितनी सतर्कता बरतती है,उससे भी ज्यादा। जितना हो सका, बात को सम्भालते हुए बोला, 'अगर तुम्हारी सचमुच मेरा विवाह कराने की इच्छा हैं तो जन्मपत्री मँगवा लेती। किस महीने कौन-सा दिन ठीक रहेगा या नहीं रहेगा, यह सब तो देखना पड़ेगा न, या बस, तेरे बकने से सब तय हो जाएगा।'

उमारानी का चेहरा फिर दमक पड़ा, आँखों का सहमापन फिर लुप्त हो गया। मेरी बात में से उसने अपनी 'बकवास' का कारण पा लिया था। शायद विवाह करने को उत्सुक दादा पर वह कृपा ही कर रही थी। आप बैठिए, मैं

जन्मपत्री लेकर आती हूँ।'

दालान के उस तरफ एक कमरा था। उमारानी उस कमरे में घुस गई। उसी समय नीचे से बुआ ने पुकारा, 'बहू, नीचे आओ, दोपहर ढल गई, चावल भी तो कूटने हैं।'

उमारानी कमरे से निकल आई। मेरे हाथ में जन्मपत्री देकर बोली, 'आप देख रखिएगा, दादा, फिर मुझे बताएगा। मैं अभी आई.....।'

वह नीचे उतर गई।

शाम होने वाली थी, नीचे के बगीचे में सद्य प्रस्फुटित नींबू फूल की सुगन्ध से कमरे की हवा ओतप्रोत हो रही थी, बगीचे की राह के बगल वाले सहजन के पेड़ फूलों से लदे हुए थे.....। ढलती धूप और गुनगुनी हवा में अमरूद के पेड़ की सादी डालों में कई रंग खिल आए थे.....।

उमारानी काम से चली गई थी, जल्दी आने वाली नहीं, यह सोचकर बाहर मैदान में जाकर टहलने की इच्छा हुई। उठा तो मेरी नजर चौकी के किनारे रखे लकड़ी के एक छोटे बक्से की तरफ चली गई, बहुत पुरान था वह बक्सा, उड़ा हुआ रंग, कब्जे टूटे हुए। मैंने बक्सा खोल लिया। देखा, उसमें नींबू के कई ताजे-टटके फूल रखे थे। कुछ गेंदे के फूल भी। और कुछ अध-सूखे चंपई फूल भी फूलों के नीचे एक अधमैला रूमाल में न जाने क्या सम्भाल कर रखा था। रूमाल में ऐसा क्या है, जो उसे फूलों के बीच रखा है, यह जानने का कौतुहल हुआ तो रूमाल खोलकर देखा लिया—उसमें कुछ चिट्ठियाँ रखी थीं। लिफाफों के ऊपर का नाम-ठिकाना लिखा था, लिखावट मेरे बहनोई सुरेन की थी। पोस्ट-आफिस की मोहर से पता चला कि चिट्ठियों की इतनी यत्नपूर्वक रक्षा कर रही थी, जिसे रात-दिन सुबह-शाम याद कर रही थी, वह कैसा अभागा था कि इस उपासना-मंदिर की धूप-गंध से मुँह मोड़कर हमेशा के लिए बाहर ही भटक रहा था।

मैदान से टहलकर जब वापस आया, संध्या हो चुकी थी और उनके रसोईघर में बत्ती जल रही थीं मेरे कदमों की आहट सुनकर उमारानी बोली, 'दादा, आ गए ....?' मेरे उत्तर देने से पहले ही वह रसोईघर से बाहर निकल आई। बोली, 'दादा, लगता है, हमारा देस घूम-फिरकर देख रहे है। कहाँ से टहलकर आ रहे है, शायद नदी-किनारे गए थे ?' फिर बोली, 'दादा, आप रसोईघर में बैठेगे ? मैंने आपके लिए स्थान बना दिया है।'

बुआ बोलीं, 'बहू, इन्हें यहाँ धुएँ में कहाँ बिठा रही हो ?'

मैं बोला, 'मुझे कोई परेशानी नहीं होगी, बैठ लूँगा बुआ।'

रसोईघर में जाकर बैठ गया। उमारानी ने खाने की तैयारी कर रखी थी।

मुझे खाने को दिया। फिर काम करने को बैठ गई। देखा, वह ढेर सारे पिसे चावल और मैदे आदि की पीठी तैयार कर रही थी। बुआ बहुत वृद्धा थीं, वे विशेष कुछ काम-काज कर नहीं पाती थी। सब समय उमारानी को ही खटना पड़ता था। दुबली-पतली लड़की का यह हाल देखकर बड़ी तकलीफ होती थी। सोचा, बिला वजह पीठी बनाकर क्यों कष्ट सह रही है। सेवा में आनन्द पाने के वास्ते उमारानी जो कुछ कर रही थी, उसके खिलाफ, लेकिन मुझसे कुछ बोला नहीं गया।

पूछा, 'रानी, मुझे पीठी बनाना सिखाओगी ?'

उमारानी शर्मा गई। चेहरा झुकाकर बोली, 'दादा' हमारे रहते आपको पीठी खाने की इच्छा हो तो क्या आप खुद पीठी बनाकर खाओगे, कि पीठी बनाना सीखना चाहते हो ?'

बुआ बोलीं, 'तो क्या तेरे दादा को जब पीठी खाने की इच्छा होगी तो सात लंका पार कर तेरे पास खाने को आएँगे ?'

उमारानी चुप रहीं।

मैं बोला, 'इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी, बुआ। आपने सुना नहीं, इसने एक दूसरा ही उपाय खोज निकाला है।'

बुआ ने पूछा, 'कैसा उपाय, भैया ?'

मैने बताया, 'यह आषाढ़ महीने में ही अपने दादा का विवाह करा रही हैं।

बुआ बोलीं, यह तो बहू ने ठीक ही कहा है। इतने बड़े हो गए हो, अब क्या विवाह न करना अच्छी बात है। घर-गृहस्थी भी तो सम्भालनी है।'

उमारानी बोलो, 'दादा, आज तो दिन तय हो नहीं पाया, मैं तो फिर ऊपर आई ही नहीं। खाने के बाद रात को मुझे जरूर पक्की तारीख बता देना।'

'जरूर बता दूँगा। अब तक तो विवाह का ख्याल तुझे कभी आया नहीं, सामने पड़ते ही लगता है, मेरे ऊपर बड़ी दया आ गयी।'

बुआ बोलीं, 'यह तुम्हारी ऐसी पगली बहन नहीं है, भैया। लगता है, वो बात बहू ने तुम्हें बताई नहीं। आज तीन-चार साल हुए, यह जब पहली बार कलकत्ता से यहाँ आई थी, तब बहू ने एक जोड़ा रेशम का मौजा बुनकर रखा था तुम्हारे लिए। कहती थी दादा को दुख है कि मेरी बहन ने मुझे मोजा बुनकर देने के वास्ते बुनाई सीखी और मोजा बुन कर पहले दे दिया पति को, सो इस बार मैं दादा को रेशम का मोजा बुनकर पहनाऊँगी। फिर उसके बाद इसका कलकत्ता जाना हो ही नहीं सका। सुरेन की कहीं दूसरी जगह नौकरी लग गई। तुम भी इधर कभी आए नहीं। कल तुम आए तो बहू की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। मुझसे बोली, बुआ, मेरी साध अब पूरी होगी, इतने दिनों के बाद अब दादा को रेशम का मौजा पहनाऊँगी।'

उमारानी की आँखें लज्जा के मारे नीचे झुकी रहीं, दिए की रोशनी में दमकता उसका चेहरा किशोरी के चेहरे के तरह ऐसा लावण्यमय और मृदुल प्रतीत हो रहा था कि लगा, ढंग के कपड़े पहन ले तो यह अब भी खूब जँचे।

इधर-उधर की बातें करते और खाना खाते रात काफी बीत गई। काफी रात गए जब ऊपर बाले कमरे में सोने आया, चाँद आसमान में उठ आया था। गहन रात्रि की मौन शान्ति उस दिन बड़ी कारुणिक महसूस हुई। आज देर तक उमारानी के निकट बैठे रहने से एक चीज मुझे खूब समझ में आ गई—उमारानी को थाइसिस हुआ था।

मौत ने उसके शान्त ललाट पर अपना तिलक लगाकर उसे वरण कर लिया था, शीघ्र ही उसे अनन्त-पथ की तीर्थ यात्रा पर निकल जाना पड़ेगा।

उमारानी पानी का गिलास देने मेरे कमरे में आई। गिलास नीचे रखकर बोली, 'हाँ दादा ! वो जन्मपत्री का क्या रहा ?'

उसके चेहरे की ओर देखा तो मन न जाने कैसा हो आया। बोला, 'रानी, इधर तो आ,' ....यह बात मेरे मन से उठी ही नहीं कि उमारानी मेरी अपनी बहन नहीं, और हम दोनों की उम्र कम ही है। जिस तरह मैं निश्चिंतता से बोला, वह भी निश्चिंतता से आ कर मेरे पाँव के पास नीचे जमीन पर बैठ गई। आठ साल पहले की तरह उसके विद्रोही बालों को प्यार से सहेजकर कानों के पास सँवार दिया। बोला, रानी, मोजे की बात किसने कही थी तुमसे।'

उमारानी ने असीम निर्भरता के साथ छोटी लड़की की तरह चौकी से झुल रहे मेरे पाँव के ऊपर अपना चेहरा छिपाकर रख लिया।.....काश, स्नेह अगर रोग-निवारण की औषधि होता तो मैं बड़े भाई का स्नेह उसे शीशी में भरकर डॉक्टरी औषधि की भाँति पिला देता।

अपने प्रश्न का कोई उत्तर उससे पा नहीं सका। क्यों नहीं पाया, यह भी कुछ देर के बाद जान लिया। जो एक मात्र व्यक्ति इस मोजे की बात जानता था या जिस एक व्यक्ति से मैंने यह मोजे की बात कही थी, वह था सुरेन। सुरेन ने ही शायद शादी के बाद यह बात किसी समय उमारानी से बताई होगी। बड़े भाई से तो छोटी बहन यह बता नहीं सकती न !

बोला, 'एक बात पूछूँ, रानी। टूनी ने कहा था, मेरा मतलब है, सुरेन क्या ठीक-ठाक चिट्ठी-पत्री लिखता है ? घर-वर में आता है ?'

उमारानी बेहद उद्विग्न हो उठी। मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया, चेहरा भी ऊपर नहीं उठाया। पूर्ववत् मेरे पाँव पर चेहरा टिकाए रही।

कई पल गुजर गए, तब वह फफककर रो पड़ी।

सान्त्वना में उससे क्या कहूँ, यह समझ में नहीं आया। बस, उसके बालों पर स्नेह से हाथ फेरता रहा....। ज्यादा दिन नहीं रहे री, मेरी सोना बहन, ज्यादा दिन नहीं रहे, तेरी मियाद अब चुकने वाली है।

व्यर्थ ही नारी-हृदय का रूद्ध आवेग परम निर्भरता के साथ अपने भाई के वक्षस्थल पर ढुलकाकर वह जब नीचे सोने चली गई, चाँद के आलोक-तले निद्रामग्न हवा सहजन के फूल की मीठी सुगन्ध में तब स्वप्न देख रही थी....।

दो-दिन के बाद उनके यहाँ से चल पड़ने का उपक्रम करने लगा। मैं तो इससे पहले ही चला आता, कलकत्ता में बहुत काम था, मगर उमारानी के साग्रह अनुरोध को टाल न पाने की वजह से अब तक रूका हुआ था।

कपड़े पहनकर तैयार हो रहा था, उमारानी रोनी-रोनी सूरत लेकर पास आ खड़ी हुई। बोली, 'अब कब आएँगे ?'

बोला, 'आऊँगा री, पूजा के समय फिर आऊँगा।'

वह बोली, 'इसमें तो बहुत देर है। नहीं दादा, आप आषाढ़ में रथ-यात्रा के मौके पर आइए। हमारे यहाँ रथ-यात्रा पर खूब रौनक होती है। और इसी साल मुझे आपका विवाह भी करना है, मेरे राजा दादामणि, आपके पाँव पड़ती हूँ, आप इन्कार मत कीजिएगा।'

उसी वक्त उसने वही रेशम के मोजे निकाले और सामने रख दिए। बोली, 'मैंने अन्दाज से बुने हैं, आप पाँवों में पहन कर देखें, जरा पता तो चले कि मैंने ठीक बुना है या नहीं।'

मोजे पाँवों में ठीक आ गए थे, यह देखकर उमारानी बेहद खुश हुई। उसके सारा चेहरा सार्थकता के आनन्द से दमक उठा।

वह बोली, 'दादा, मैं आपकी गरीब बहन हूँ, कभी मेरे यहाँ आते नहीं, आए भी तो न तो ठीक से खिला-पिला सकी और न ही आदर-सत्कार कर सकी। यहाँ आकर सिर्फ कष्ट ही पाया, क्या करूँ, मेरी जैसी किस्मत !'

बहुत दिन पहले की तरह उसने गले में आँचल डाला और मुझे प्रणाम किया, उसकी आँखों से आँसू टप-टप कर मेरे पाँवों में गिरने लगे।

मैंने उसे ऊपर उठाया और उसके सिर पर हाथ फेरता हुआ बोला, 'रानी, तू मेरी माँ-जयी बहन ही है। यह कभी मत भूलना कि तेरा बड़ा भाई अभी जिन्दा है।'

जब चलने लगा तो वह बाहरी दरवाजा पकड़े खड़ी-खड़ी मुझे देखती रही। चलते-चलते पीछे मुड़कर देखा तो पाया कि वह टकटकी लगाए मुझे ही ताक रही थी।

रास्ते का मोड़ काटते समय भी वह नजर आ रही थी। ढलती शाम की पीली धूप सुपारी के पेड़ों की दरार से छिटककर उसके रूखे-सूखे घुँघराले वालों से घिरे चेहरे पर पड़ रही थी।

एकाध साल के बाद मैं फिर नौकरी के सिलसिले में मयूरभंज स्टेट पहुँचा। वहीं रहते वक्त सुरेन के एक खत से पता चला, उमारानी मर गई।

जानता था, वह मरेगी ही। उस बार जब उसके यहाँ गया था, तभी इसका आभास हो गया था कि यही उसके साथ अन्तिम मुलाकात है। वापस आकर मैंने उमारानी के स्वास्थ्य के बारे में सुरेन को एक खत में सब खोलकर लिखा था, यह भी सुझाव दिया था कि वह उसे किसी अच्छी जगह ले जाए। सुरेन ने जवाब दिया था, वह बहुत व्यस्त है, पूजा के अवसर पर शायद छुट्टी मिल जाए, फिलहाल तो उसे कहीं ले जाना संभव नहीं, आदि। उमारानी उसी भाद्र माह में मर गई।

इसके बाद कई साल बीत गए। इस बार कुछ दिन की छुट्टी लेकर कलकत्ता आकर देखा, वे लोग अपने उसी घर में रहने लगे थे। मैं आया हूँ, यह मालूम होते ही टूनी मुझसे मिलने आई। कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद टूनी ने कागज में लिपटा न जाने क्या मेरे हाथ में दे दिया। पुड़िया खोलकर देखा तो उसमें लड़कियों द्वारा सिर में लगाने वाले चाँदी के कुछ काँटे थे।

टूनी बोली, 'भाभी के भाद्र माह में मरने से पहले श्रावण माह में चाँपापुकुर गयी थी। भाभी ने आपके बारे में ढेरों बातें कीं। बोली, माँ-जाया भाई क्या होता यह मैंने दादा को देखकर जाना, ननदी। मेरी बड़ी इच्छा है कि विवाह करके उन्हें गृहस्थ बना दूँ। मेरे दादा जीवन में अकेले हैं, कोई उनकी देखभाल करने वाला नहीं, इससे मुझे बेहद दुख होता है। ये चाँदी के काँटे उसने आपकी शादी होने पर आापकी बहू को देने के वास्ते बनवाए थे। उसने ये आषाढ़ में बनवाए थे, मैं गयी तो तुझे दिखा कर बोली, इच्छा थी, सोने की कंघी देकर दादा की बहू का मुखड़ा देखूँगी, मगर इतना पैसा कहाँ से आएगा, फिर इसी माह दादा की शादी कर देनी है। हो जाए, फिर बनवाने की कोशिश करूँगी। काँटे उसने बक्से में सम्भालकर रखे थे। इसके बाद भाद्र में भाभी का देहान्त हो गया तो मैं बक्से में से निकाल लायी, आपको देने के वास्ते। भला रुपए कहाँ से लाती, सारा साल लगा कर उसने जो कुछ किया, उसी से ये काँटे बनवा सकी। भैया तो उसे एक पैसा भी नहीं देते थे, उससे गुजारा होना ही मुश्किल था, यह तो आप वहाँ जाकर अपनी आँखों से देख ही आए थे।'

मैंने पूछा, 'फिर उसके पास पैसा आया कहाँ से आया ?'

टूनी बोली, 'भाभी को बाजार में खाना बहुत पसन्द था। से लोग पश्चिम में रहते थे, वहाँ शायद खाने की मनपसन्द चीजें मिलती नहीं, इसी कारण बाजार की कचौड़ी, नमकीन आदि के प्रति उसमें बच्चों जैसी ललक थी। भाभी करती क्या थी, नारियल के . . के दोने बनाती थी, लोग पैसे देकर दोने खरीद लेते थे। इसी से उसे पैसे मिलते थे और वह मुहल्ले के बच्चों के हाथ से गोपाल नगर के हाट से खाने की चीजे मँगवाती थी, फिर खुद भी खाती थी और बच्चों को भी खिलाती थी। जब से आप वहाँ से होकर आए, तब से वह उन पैसों से खाने की चीजें न मँगवाकर जमा करके रखने लगी और ये काँटे बनवाए।'

'वह किस समय मरी ?'

'रात के अन्तिम पहर में, लगभग चार बजे। रात को भाभी को तेज बुखार हुआ, उसी बुखार में वह एकदम बेहोश हो गई। उसके अगले दिन मैं उसके बिस्तर के वगल में बैठी थी। देखा, भाभी तकिए के इधर-उधर हाथ फेर रही थी, जैसे कुछ खोज रही हो। मैं बोली, लक्ष्मी भाभी, क्या हुआ, ऐसे क्यों कर रही हो ? उस समय वह पूरे होश में नहीं थी, उस पर सम्मोहन छाया हुआ था। बोली, मेरी चिट्ठियाँ कहाँ हैं, मेरी वही चिट्ठियाँ? इतना कहकर वह फिर तकिए के नीचे खोज-बीन करने लगी। भैया ने विवाह के बाद शुरू-शुरू में जो चिट्ठियाँ उसे लिखी थी, उन सबको उसने सम्भालकर बक्से में रखा था, यह मैं जानती थी। मैं वे सब चिट्ठियाँ निकालकर लायी और उसके आँचल में ठूंस दीं–तब जाकर वह शान्त हुई। फिर उसी रात वह मर गई। जब उसे बाहर निकाला गया, तब भी उसके आँचल में चिट्ठियाँ बँधी थी ?'

मैंने पूछा, 'सुरेन उस समय नहीं था ?'

टूनी बोली, 'भैया को पहले ही टेलीग्राम भेजा गया था, वे जब वहाँ पहुँचे, तब तक भाभी का अन्तिम-संस्कार हो चुका था।'

कई वर्ष व्यतीत हो गए।

अब भी शीत के अवसान पर जब नींबू-फूल उगते हैं, सहजन-तले फूलों की धूम मच जाती है, गाँवों के वन-झुरमुट में फूल दमकने लगते हैं। तालाब के पानी में काँचन फूलों की रंगीन छाया पड़ती है, फागुन के दोपहर की आवेश-विभोर धूप आकाश-पवन में थर-थर कर काँपती रहती है, तब मन में सोचते-सोचते किसी की बात जैसे कौंध पड़ती है....लगता, जैसे कोई बहूत दूर से अस्त-व्यस्त बालों से घिरे कातर चेहरे से एकटक ताक रहा है....तब मन न जाने कैसे-कैसे हो उठता। अचानक जैसे आँखों से आँसू टपकने लगते.....।

●

बहू-चण्डी का मैदान

गाँव की बावड़ी में प्रविष्ट होते ही नौका कीचड़ में जाकर फँस गई।

कानूनगो हेमनबाबू बोले, 'बबूल पेड़ के तने से रस्सा फँसाकर नौका बाँध दो...।'

बाहरी नदी में भाटे का खिंचाव आरम्भ हो गया था, तट के झाड़-झंखाड़ों के नीचे का पानी सरक गया था। और कीचड़ उभर आया था।

हेमन बाबू बोले, 'जरा नीचे उतर कर देखेंगे नहीं कि पिन कहाँ गाड़ी गई थी? जितनी जल्दी खाना-पूरी हो जाए, उतना अच्छा....।'

इस कदर सुहानी शाम की बेला में आगे काम करने की इच्छा हुई नहीं। पीछे की नौका से लोग उतरकर स्थान चुनेगे और वहाँ तम्बू गाड़ेगे। जरीफ के बड़े साहब के जल्दी ही सदर से आने की बात थी, सो काम जितनी जल्दी शुरू हो जाए, सबका इसी ओर ध्यान था। सब-डिप्टी नृपेन बाबू काम सीखने के लिए इस बार पहले खानापूरी के काम में आए थे। उम्र ज्यादा नहीं थी—छोकरा ही समझो—मगर बीच नदी में नौका के हिलते-डुलते ही उन्हें बहुत डर लगा था। शायद भय के भूत को भगाने के लिए वे इतने देर से छाजन के नीचे सोने का नाटक कर रहे थे। अब जो तट से आकर नौका लगी तो वे छाजन से बाहर निकल आए और बात-बात में हेमन बाबू के साथ न जाने किस विषय पर बहस करने लगे।

नृपेन बाबू से बोला, 'इस बहस में क्या रखा है ? इससे अच्छा तो यह है कि नीचे चलिए, तम्बू की जगह खोज लें, ताकि कल सुबह ही काम शुरू किया जा सके।'

चैत्र मास जाने-जाने को था। नदी के किनारों में हरे-हरे वृक्ष खड़े थे और लताओं में फूल खिले थे। बाँस के झुरमुट कहीं-कहीं नदी किनारे पानी में झूक आए थे, कहीं पानी में खिले फूलों लताएँ वनफूलों की डालियों से जा मिली थी। दोनों किनारे के धूप में अलसाए घास के मैदानों में पत्ते-विहीन बबूल के पेड़ों पर पक्षी शोर मचा रहे थे।

शाम उतर आई थी। हम वहीं बावड़ी किनारे वाले मैदान में तम्बू गाड़ने की जगह खोजने लगे। नदी किनारे से गाँव कुछ दूर होने के बावजूद गाँव की औरतें नदी से ही पानी भरने आती थीं। जहाँ हमारी नाव बँधी खड़ी थी, उसके बाएँ किनारे कुछ दूर मिट्टी की सीढ़ियों का कच्चा घाट था। गाँव के एक वृद्ध शायद नदी में गर्मी की शाम में नहाने आए थे, उससे हमने पूछा, 'क्यों महाशय, रसूलपुर किस गाँव का नाम है ? सामने वाला या यह बगल वाला ?'

वे बोले, 'अजी नहीं, यह है कुमूरे, बगल वाला है आमभांगा, रसूलपुर तो इसे गाँव के पीछे है, लगभग दो कोस की दूरी पर। आप लोग कौन हैं।

हमारा परिचय सुनकर वृद्ध ने कहा, 'क्या इसी मैदान में आप तम्बू गाड़ेगे? आपके जरीफ के काम को खत्म होने में शायद चार-पाँच महीने लग जाएँगे।'

वृद्ध बोले, 'यहाँ एक ठाकुर का स्थान है, गाँव की लड़कियाँ-औरतें पूजा करने आती है। मैं तो कहूँगा कि जरा हटकर नदी के मुहाने की तरफ तम्बू गाड़िए, वरना यहाँ लड़कियों को जरा असुविधा होगी।'

वृद्ध का नाम था भुवन चक्रवर्ती। जरीफ का काम शुरू हो गया तो अपनी जरूरत के मारे चक्रवर्ती महाशय दलील-पत्र बगल में दाबे कई बार तम्बू में आने-जाने लगे। सभी के साथ उनका मेल-मिलाप और बातचीत का सिलसिला बन गया। उनकी पैतृक सम्पत्ति-जमीन का काफी बड़ा हिस्सा धोखाधड़ी से हाथ से निकल गया था। बेचारे चाहते थे कि हमारी मदद से अबकी बार उनका उद्धार हो जाए। इस तरह की बातें वे हमसे प्रायः कहा करते थे।

मैं वहाँ ज्यादा दिन टिकने वाला नहीं था। खानापूरी का काम आरंभ हो गया था। मैं उसी दिन वापस जिले जा रहा था। ज्वार के इन्तजार में नाव के खुलने में देर हो रही थी। चक्रवर्ती महाशय भी उस दिन वहाँ मौजूद थे। बातों-बातों में मैंने पूछा, 'इसे बहू-चण्डी का मैदान क्यों कहते है, चकौति महाशय?'

नृपेन बाबू भी बोले, 'हाँ चकौती महाशय, जरा बताइए तो, यह बहूचण्डी भला क्या हुआ? ऐसा नाम सुना नहीं कभी।'

हमारे प्रश्न के उत्तर में चक्रवर्ती महाशय के मुँह से एक अद्‌भुत कथा सुनने को मिली। वे कहने लगे, 'ठीक है, तो सुनिए। इस अचल के कई पुराने लोग यह कहानी जानते हैं।'

पुराने जमाने में इस गाँव में एक घर में सम्पन्न गृहस्थ रहा करता था। अब उनका कोई नहीं बचा, मगर जिस वक्त की यह बात है, तब उनके घराने के पतितपावन चौधरी महाशय का खूब नाम और धूम मची थी।

यही पतिपपावन चौधरी महाशय जब तीसरी बार विवाह करके वहू घर में

लाए तो उनकी उम्र पचास पार हो चुकी थी। यह कोई बहुत बड़ी उम्र नहीं थी—खाता-पीता शरीर था—पचास साल होने के बावजूद चौधरी महाशय अपनी उम्र की तुलना में छोटे दिखते थे। बहू देखकर घर के सभी लोग बेहद सन्तुष्ट हुए। तीसरा विवाह था, सो चौधरी महाशय ने खूब जाँच-परख करने के बाद पसन्द की लड़की से ही विवाह किया था—नई बहू, उम्र थी लगभग सत्रह साल के आसपास। बहू के मुखड़े की गढ़न बहुत सुन्दर थी। दोनों आँखें बड़ी-बड़ी और चेहरे-आँखों में शान्त भाव। नई बहू का काम-काज व धीर शान्त भाव देखकर मुहल्ले के लोग बोले, 'इस तरह की बहू पहले कभी इस गाँव में नहीं आई।' वह धरती की ओर निगाहें गड़ाए बिना किसी से बात नहीं करती, अपने से छोटे उम्र की चाचियों और सासों के झुण्ड के आगे भी घूँघट निकालती। सभी कहते, 'लक्ष्मी का जैसा रूप, वैसा ही गुण....।'

मगर दो-तीन महीने के बाद एक मुसीबत आन टपकी। सवेरे पता चला, बहू में और सब-कुछ ठीक है, बस, एक ही दोष है। वह पति की पकड़ में आती नहीं, उससे हमेशा बचकर चलती है। शुरू-शुरू में सबने सोचा था, नई-नई बहू बनी है—बच्ची है—शायद इसी वजह से ऐसा करती है। मगर धीरे-धीरे पता चल गया, पति ही नहीं, वह हर मर्द से डरती-काँपती है। घर में कभी किसी विशेष अवसर पर बाहर के लोगों की भीड़ होती तो उस दिन वह कमरे से निकलती ही नहीं। पति के कमरे में तो किसी तरह जाने को राजी नहीं होती। महीने में एक दिन या दो दिन सभी प्यार-मनुहार से उसे भेजना चाहते, वह एक-एक के पाँव पड़ती, इस-उस के पास विनती करती, मगर किसी की एक न सुनती। किसी मर्द के गले का स्वर सुनते ही वह सिकुड़-सिमट जाती।

कई तरीकों से समझा-बुझाकर सबने उसे एक दिन पति के कमरे में भेज दिया और बाहर से दरवाजा बन्द कर दिया। चौधरी महाशय ने बहुत रात गए कमरे में जाकर देखा, उनकी तीसरी बार की बहू कमरे के एक कोने में सिकुडी-सिमटी खड़ी है और भय से थर-थर काँप रही है। इसके बाद फिर वह किसी तरह भी पति के कमरे में जाने को राजी नहीं हुई। घर के सारे लोगों के पाँव पड़ती, उनसे कहती, 'मुझे बड़ा डर लगता है, मुझे उस दिन की तरह फिर कभी वहाँ मत भेजना, 'तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ.....।'

उसे समझाते-बुझाते घर के लोग परेशान हो गए।

कई दिन बीत गए। एक दिन उसे सभी ने मिलकर जबरदस्ती पति के कमरे में घुसा दिया और बाहर से दरवाजा बन्द कर दिया। उनका विचार था, इसी प्रकार करते-करते धीरे-धीरे उसकी लज्जा टूटेगी, वरना यह कुचाल भला कब तक कोई

सहेगा? सुबह उठकर सभी ने देखा, कमरे में बहू नहीं है, वह घर में कहीं नहीं थी। पास ही के गाँव में बाप का घर था, शायद वही भाग गई हो, यह सोचकर वहाँ आदमी भेजे गए। उन्होंने वापस आकर बताया, वह वहाँ नहीं गई। तब सभी ने कहा, 'कहीं तालाब में न डूब कर मर गई हो।' तालाब में जाल फेंका गया, मगर उसका पता नहीं चला। बहू रानी का कोमल चेहरा और निरीह आँखों का भाव याद कर लोगों को इसके अलावा कोई अन्य सन्देह हो ही नहीं रहा था। इधर-उधर खूब तलाश की गई, मगर वह मिली नहीं। चौधरी महाशय मानसिक शोक-निवारण करने के लिए चौथी बहू घर में ले आए।

नितान्त ठेठ गाँव था, ऐसी घटनाएँ घटती नहीं थीं, कई दिनों तक इसे लेकर चर्चा चलती रही, इसके बाद धीरे-धीरे सारी चर्चा ठण्डी पड़ गयी। इस मैदान के पूर्वी किनारे के गाँव में ही चौधरी का मकान था। तब यहीं से नदी की धारा बहती थी। बावड़ी तो अब जाकर बनी है। पहले तो बचपन में हमने भी यहाँ से धान से भरी नौकाएँ गुजरते देखी थी। धीरे-धीरे चौधरी के सब लोग मर गए, अन्त में वंश का जो कोई एक बचा था, वह भी यहाँ से उठकर कहीं अन्य जा बसा। यह सब बहुत साल पहले की बात है—यही कोई सत्तर-अस्सी साल पहले की। तभी से आज तक इस सारे मैदान में एक अजीब-सा काण्ड घटता हुआ सुना जाता है।

इस फागुन-चैत्र मास में, जब बेहद गरमी पड़ती है, चरवाहे यहाँ गौएँ चराने आए तो कई बार दूर से ही देखा, मैदान-किनारे जंगल में सुनसान दोपहरी को बाँस-वन की छाया-तले जैसे कोई लेटा हुआ है। पास जाकर देखते तो कोई नजर नहीं आता।.....कई दिन शाम के समय वे जब गौओं का झुण्ड लेकर गाँव की ओर लौटते तो सुनते कि अँधेरे झुरमुटों से जैसे किसी के रोने का स्वर उभर रहा है—दबे गले से।....चाँदनी रातों में कइयो ने नदी घाट से लौटते वक्त यह भी देखा कि दूर मैदान में झिलमिलाती चाँदनी में कोई सफेद साड़ी पहने दूर-दूर चली जा रही है। उसकी सफेद साड़ी चाँदनी में जग-मग करती।....मैदान में जब शाम गहराने लगती, तब फूलों-भरे नाग-केसर के पेड़ के नीचे खड़े होकर ध्यान से देखने पर महसूस होता कि जैसे थोड़ी देर पहले यहाँ डाल से कोई फूल तोड़ गया है....उसके छोटे-छोटे पाँवों के निशान उस ओर चले गए थे, जहाँ घना वन था।

मैदान-किनारे इस पेड़ के नीचे चण्डी-मण्डप था। चैत्र-संक्रांति के अवसर पर ग्राम-वधुएँ बताशे, कच्चा दूध और नया गुड़ लेकर चण्डी-बहू की पूजा करने आतीं। बहू-चण्डी सबका मंगल-करतीं। बीमारों का भला करतीं। नव-प्रसूताओं का दूध सूख जाता तो इनके चरणों में आते ही छाती में दूध भर जाता। नवजात शिशुओं की सर्दी भगा देती, लड़का विदेश में जाकर चिट्ठी भेजना भूल जाए तो

देवी की कृपा से अगले दिन ही उसकी चिट्ठी मिल जाती। संकट-आफत में पड़ी लड़कियों का उद्धार भी देवी पलक झपकते कर देतीं।

चक्रवर्ती महाशय की कथा समाप्त हुई। कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होने के बाद वे तथा अन्य सभी उठकर चले गए।

दोपहरी ढल गयी थी। शाम उतर आयी थी। हवा में चण्डी-मण्डप बाले पेड़ से सर-सर की आवाज आ रही थीं। गाँव-मैदान काफी दूर तक ऊँचे-नीचे दूहों व फलों वाले पेड़ों से भरा हुआ था। बाईं तरफ दूर एक पुराने ईंटों का खण्डहर एक बरगद की ओट में जरा-सा नजर आ रहा था।

नौका की छत पर बैठा मैं अस्सी साल पहले की पलातक ग्राम्य-वधु के बारे में सोचने लगा। मैदान के बीच ऊँचे दूह के ऊपर वाले पुष्पित वृक्षों की देखकर लगा, जैसे वह हमेशा वहीं छिपी बैठी रहती है, सिर्फ गहरी रात को बाहर निकलती है और बट-वृक्ष के नीचे चुपचाप बैठी आकाश को निहारती रहती है। पास के झुरमुट के खिले वन-अपराजित के फूलों के रंग से रंग मिलती नदी बहती जाती ....वह बीच-बीच में पूर्व की तरफ ताकने लगती कि सुबह की रोशनी फूटने में अभी कितनी देर है।....

शाम गहरा गयी थी। वन के ऊपर नवमी का चाँद खिला था। थोड़ी देर वाद ही ज्वार उठा तो हमारी नौका को नदी में छोड़ दिया गया। पानी के किनारे अंधकारमय एकान्त झुरमुटों में से सचमुच जैसे रोने का स्वर सुनायी देने लगा। शायद यह स्वर किसी रतजगे पक्षी का हो या किसी पतंगे की पुकार।

वावड़ी का मुहाना पार कर जब हम बाहरी नदी में आ पहुँचे, तो पीछे मुड़कर देखा—निर्जन गाँव के मैदान में सफेद कुहासे का घूँघट ओढ़े झिलमिलाती चाँदनी-रात धीरे-धीरे छिपकर चोर की तरह खिल रही है, बहुत पहले की उस लजीली-शर्मीली भीरू ग्राम्य-वधू की तरह।

●

नव वृन्दावन

कर्णपूर संसार छोड़कर वृन्दावन जा रहे थे।

संसार में उनका कोई भी नहीं था। पत्नी पाँच-छः साल पहले मर गयी थी। एक दस साल का बेटा था। वह भी पिछली सर्दियों में शारदीय पूजा के अवसर पर अष्टमी के दिन गुजर गया था। संसार में और कोई बंधन था नहीं। जो विषय-संपत्ति थी, वह सब बांट-बूंट दी और अत्यंत पुराने ताल पत्रों के कुछ भक्ति ग्रन्थ जीर्ण पोटली में बाँधकर कर्णपूर पैदल ही वृदावन जाने को तैयार हुए।

कर्णपूर का जन्म-ग्राम अजय नदी के किनारे था। वे परम वैष्णव की संतान थे। अजय के पानी के दोनों किनारे के वन-तुलसी मंजरी के गाँव में किसी शैशव में ही उनकी वैष्णव धर्म में मानसिक दीक्षा हुई थी। उन्होंने गाँव की शाला में बहुत अच्छे ढंग से संस्कृत का अध्ययन किया था। दो-एक छात्रों को कुछ समय तक स्मृति व वैद्यक भी पढ़ायी थी। छात्रों ने देखा था, उनके अध्यापक बीच-बीच में कमरे का दरवाजा बंद करके सारा दिन रो रहे हैं। उन्हें पागल बताकर बदनाम किया गया और छात्रों ने पढ़ना छोड़ दिया, पड़ोसी उनसे कटने लगे, ऊपर से यह कि पहले पत्नी मरी, फिर पुत्र भी चल बसा। संसार से कर्णपूर का मन एकदम उचट गया।

जाते समय रिश्ते का भाई रसराज आकर झूठमूठ रोया। गाँव के ब्राह्मण ने बहुत दिनों से कर्णपूर से उधार ले रखा था और तब से जानबूझकर उनसे सौ हाथ दूर ही रहता आया था, आज जब उसने देखा कि कर्णपूर सचमुच ही चले जा रहे हैं और उनके वापस आने का कोई उपाय नहीं है तो उसने आकर खूब हाय-तोबा की—और कुछ महीने रह जाइए, किसी तरह आपका उधार चुकता कर दूँ, सिर पर उधार रखना पाप है, इत्यादि ! उदारचित कर्णपूर ने यह सब छल-प्रपंच का नाटक समझा नहीं। उन्होंने रसराज के अनुरोध पर उसे ताल-सरोवर के पाड़े कली धान की एक टुकड़ा उत्कृष्ट जमीन दान कर दी। ब्राह्मण अधमर्ण से बोले, 'एक कौड़ी तो लाना भैया, उसे ही लेकर तुम्हें ऋण-मुक्त कर दूँ।'

अपना कहने को कोई न था उस गाँव में, सो जाते वक्त उनके लिए किसी

में भावना का ज्वार नहीं उठा। शैशव-स्मृति के प्रथम दिन से ही परिचित माटी के चण्डी-मण्डप, अपने हाथों से रोपे कई फल-फूलों के पेड़ और घर के आँगन को पीछे छोड़कर वे चल पड़े, वापस लौटने की तमन्ना नहीं रही। सिर्फ गाँव की सीमा के पास अजय-किनारे पहुचकर कर्णपूर थोड़ी देर को खड़े रहे।....अजय किनारे पुराने शिरीष पेड़ के तीचे श्मशान था। कुछ महीने पहले ही उन्होंने मातृविहीन बेटे का यहीं दाह-संस्कार किया था। अजय में फिर बाढ़ नहीं आयी थी, सो उस चित्ता का चिह्न अब भी बिलकुल विलीन नहीं हुआ था। उसके कोमल चेहरे की अबोध मुस्कराहट उन्हें याद आ गयी। मृत्यु से पहले साँस की तकलीफ से उसे बेहद यंत्रणा हुई थी। उस समय की उसकी आर्तंति, आकुल और असहाय आँखें भी उन्हें याद आ गयीं।....कर्णपूर चुपचाप अजय के उस पार के किनारे को टकटकी बाँधकर देखते रहे और खड़े रहे।.....दहकती हुई बालू-राशि की शैय्या पर जीर्ण-शीर्ण नदी अलसायी-सी दूर तक पसरी पड़ी थी। उस पार इधर-उधर एकाध दिशाहारा बादल के टुकड़े आकाश के कोने-कोने से निकलकर अगले पल ही सुदूर अनन्त के पथ में गायब हो रहे थे। कुछ क्षणों तक खड़े-खड़े देखते रहने के उपरांत उन्होंने पुनः चलना आरंभ किया। पीठ पर रखी पोटली में कुछ वस्त्र थे तथा थोड़ा-बहुत नितान्त आवश्यक द्रव्यादि। दाएँ हाथ में माधवी-लता की आड़ी-तिरछी एक मजबूत छड़ी और बाएँ हाथ में पीतल का लोटा। यह सब लेकर उन्होंने अजय नदी पार की और पश्चिमी दिशा की ओर चल पड़े।...जीवन में जो कुछ प्रिय था, जो कुछ परिचित था–सब इस पार रह गया।

दिन के दिन वे अविश्रान्त चलते रहे। कभी सन्ध्या के समय वे गाँव की चट्टी में तो कभी किसी गृहस्थ के चण्डी-मण्डप में आश्रय लेते। ग्राम्य पथ से गुजरते समय लोग आदर से गृह-त्यागी सौम्य दर्शन ब्राह्मण की पोटली में ढेर सारा खाद्य-द्रव्य भर देते, लोटे में ऊपर तक शुद्ध निर्जल दूध डाल देते। वे किसी दिन अपना सामान्य हिस्सा उसमें खा लेते तो किसी दिन किसी दरिद्र पथयात्री भिक्षुक या किसी भूखे कुत्ते को खिला देते। कितने गाँव, हाट, मैदान, कितने समृद्धशाली वाणिज्य केन्द्र और कितनी नदियाँ पार करके चलते-चलते एक दिन अन्त में वे एक निर्जन व सुनसान बहुत बड़े एक जंगल में जा पड़े। वे एक ही निरोगी व स्वस्थ गृहस्थ थे, विदेश की कभी यात्रा नहीं की थी। सूर्य डूबते ही चारों ओर अँधकार गहराने लगा। कर्णपूर ने चारों तरफ नजरें घुमाकर किसी इंसान को खोजना चाहा–दूर-दूर तक जन-जीवन का चिह्न नहीं था। उन्हें डर लगा कि कोई वन्य-जन्तु या डाकू आकर हमला बोल दे तो क्या होगा? अगले पल ही सोचा, मैं तो संन्यासी हूँ, डाकू आकर मुझसे क्या छीन लेंगे। अजय-किनारे बूढ़े शिरीष पेड़

के नीचे एक धूसर हेमन्त-सन्ध्या की बात याद आते ही कर्णपूर के मन से वन्य-जन्तु का डर भी जाता रहा।

वन्यपथों से चलते-चलते खाने को कुछ नहीं मिलता तो किसी दिन जंगली फूल, महुआ आदि खा लेते और किसी दिन घास के हरे पत्ते खाकर भूख मिटा लेते; पहाड़ी नदियों से अंजलि भर कर पानी पी लेते। बीच-बीच में गाँव भी जाते।

संध्या के समय उस दिन उन्होंने एक ताल-वन में आश्रय लिया। आसपास बस्ती नहीं थी। पथरीली धरती की माटी झिलमिला रही थी। थोड़ी देर के बाद तालवन के पीछे जाकर सूरज डूब गया। आसमान में पंचमी का जरा-सा चाँद नजर आ रहा था।

उस दिन राह चलते-चलते एक भिक्षुक से उनकी बातचीत हुई थी। तीन-चार महीने पहले वह जीविका की खोज में घर से निकला था और उस दिन कुछ कमा-धमाकर वह घर वापस जा रहा था। घर में उसके छोटी-छोटी दो लड़कियाँ और एक लड़का था। उनके चेहरों की स्मृति आँखों के सामने कौंधते ही उसे अपना कष्ट कभी कष्ट की तरह प्रतीत नहीं होता था। फटे कपड़े की पोटली में रंग-बिरंगे पत्थरों के खिलौने थे, अजब-अजब पक्षियों के पुतले थे—ऐसी तुच्छ चीजों को बड़े एहतियात से बाँधकर घर ले जा रहा था—बच्चों के खेलने के वास्ते। उस दिन कर्णपूर को लगा था—धत्, यह मूर्ख संसारी जीव है।...लेकिन अब अनजाने में उन्हें लगा कि वह भिक्षुक उनकी अपेक्षा अधिक सुखी था। भिक्षुक तो कुछ दिनों के वाद घर वापस जा रहा था। लेकिन उनका घर कहाँ था?....अगले पल ही अपनी दुर्बलता को झटककर उन्होंने अप्रतिभ होकर सोचा, भगवान ने ही दया करके संसार का भार उनके कंधों से उतार लिया है। यह तो अच्छा ही हुआ, इसमें मन को दुखाने की क्या बात है?

वे नीचे बैठ गए और अपना प्रिय एक श्लोक पढ़ने लगे। तालवन के ऊपर पंचमी के चाँद को ताकते हुए बार-बार श्लोक पढ़ते-पढ़ते उनकी आँखें सजल हो उठीं। रात को महीन ज्योत्स्ना, मैदान की निर्जनता और श्लोक के पद-लालित्य में उनके मन की न जाने कौन-सी अव्यक्त व्यथा जैसे उनके दिलो-दिमाग में उभरने लगी। उसे दवाने के वास्ते वे बैठे-बैठे इष्ट-देवता का स्मरण करने लगे। इष्ट-देवता की मूर्ति की कल्पना करने लगे तो उन्हें लगा, वह अनन्त आकाश की तरह उदार-प्राण है, वह ज्योत्स्ना की तरह अनाविल है, चारों ओर फैले प्रांतर वन की तरह शान्त है—यानी उनका श्रीकृष्ण। श्लोक के ललित स्वर की तरह उनकी वाणी मधुर है, श्यामवर्ण वन-भूमि की तरह उनकी स्निग्ध कांति है।...मगर उनके चेहरे की कल्पना की, तो न जाने क्यों बार-बार मृत पुत्र का चेहरा आँखों के सामने

कौंधने लगा। उसे जलाने के बाद से कर्णपूर यह चेहरा कभी भूले नहीं थे। मन में जैसे गड़ गया था। उस चेहरे के अलावा उन्हें और कोई चेहरा भाता ही नहीं था। यों यह भले ही उन्होंने पूर्णरूप से न स्वीकारा हो, पर मन के किसी गुप्त कोने में यह इच्छा हमेशा उठा करती थी कि इष्ट देवता अगर बेटे के रूप में उन्हें नजर आ जाए तो कितना सुखकर हो। अगर कभी नजर आ जाए तो बस बेटे के रूप में ही।

रात के अंतिम प्रहर में कर्णपूर ने स्वप्न में देखा, ज्योत्स्ना से गढ़ी देह में उनका बेटा पास आकर खड़ा है।...उनके मृत पुत्र का चेहरा बेहद खूबसूरत था, इसके बावजूद वह अधिक सुन्दर नजर आ रहा था। चेहरे की एक-एक रेखा स्पष्ट थी। भ्रू के ऊपर जो काला तिल था, वह अब भी विलीन नहीं हुआ था। होंठों पर वही निश्चल हँसी।...धीरे-धीरे से उनके कान के पास मुँह ले जाकर उसने चुपके से पुकारा, 'बाबा!'...कई दिनों से विलुप्त पुत्र को आकुलता से अपनी बाँहों में भरना चाहा तो कर्णपूर की नींद टूट गयी। देखा, सुबह कब की हो चुकी थी, तालवन के ऊपर धूप उठ आयी थी।

सुबह उठकर वे दुबारा यात्रा पर निकल पड़े। रास्ते में कई गाँव मिले, मगर वे कहीं रुके नहीं। सारा दिन चलते रहने के बाद शाम होने से पहले दूर से एक छोटा-सा गाँव नजर आया। बेहद थके हुए थे, सो सामने बस्ती देखकर उन्हें बड़ा सुकून मिला। ठिकाने और सहारे की तलाश में उन्होंने गाँव में प्रवेश किया। शुरू के दो-चार मकान छोड़कर गाँव में कुछ दूर तक आगे बढ़ते ही उन्हें अजीब-सा महसूस हुआ। किसी घर से कोई आवाज नहीं, किसी घर से रसोई का धुआँ नहीं। राह में कोई आवा-जाही नहीं, कहीं कोई जन-प्राणी नहीं। अधिकांश घरों के बाहरी दरवाजे खुले हुए थे। खुले दरवाजे से भीतर झाँको तो अंदर एक कपड़ा भी नजर नहीं आता। आश्चर्यचकित होने के बावजूद सारे दिन की यात्रा से वे इस कदर क्लान्त थे कि न उन्हें कुछ समझने-सोचने का होश था और न यह पता करने की सुध कि यहाँ हुआ क्या है। वे सामने वाले एक घर के बाहरी कमरे में जा घुसे और गठरी-पोटली उतारकर विश्राम के लिए नीचे पड़ गए।...लगभग दो घन्टे कट गए, मगर घर के अंदर से किसी इंसान का कण्ठ-स्वर उन्हें सुनायी नहीं दिया। इन दो घन्टों में सामने से कोई इंसान तो क्या एक पालतू पशु तक गुजरता हुआ नजर नहीं आया। इस बीच उनकी थोड़ी-बहुत थकावट दूर हो चुकी थी। सोचा, इस घर के अंदर जाकर देखना चाहिए, आखिर लोग कर क्या रहे हैं?

घर में एक-एक कदम करके वे घुसे तो उनकी आँखों में जो पड़ा, उसे देखकर सिहर उठे। एक कमरे में तीन मृत देहें आसपास पड़ी थीं। साफ प्रतीत हो

रहा था, उन्हें मरे काफी देर हो चुकी थी। वह बगल के एक और कमरे में गए। देखा, फर्श पर एक और औरत की मृत देह शैया पर पड़ी है। मृत देह के पास एक अनिंद्य सुंदर-गौरवर्ण शिशु कुलबुला रहा था वह शैया के बगल में घुम-फिर रहा था और जाले में लटक रहे एक मकड़े की ओर हाथ बढ़ाकर पकड़ने जा रहा था--मन-ही-मन हँस रहा था।

कर्णपूर ने अनुमान लगाया, किसी भीषण महामारी के कारण इन दो-एक दिनों में गाँव का यह हाल हुआ है। घर-घर में मृत देहों के ढेर लगे हुए थे, जिनका दाह-संस्कार करने वाला कोई नहीं, जिनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं ! जो बचे थे, वे जान बचाकर गाँव से भाग गए थे।

शिशु ने कर्णपूर को देखा तो मुस्कराकर उनकी ओर हाथ बढ़ा दिया। उसकी माँ को मरे ज्यादा वक्त नहीं बीता था, यह दो बातों से स्पष्ट था। पहली, यह छोटा-सा शिशु भुखा-प्यासा होता तो इस तरह मुस्कराता नहीं होता, कुछ क्षण पहले ही उसकी माँ ने जीवितावस्था में उसे स्तनपान कराया होगा। दूसरी, मृतदेह जरा भी विकृत नहीं हुई थी, जैसे शिशु की माँ अभी-अभी सोयी हो। आसन्न मृत्यु और घनीभूत विपदा के सम्मुख भी अबोध शिशु की निश्चिंत मुस्कराहट और खेलकूद देखकर कर्णपूर को याद आया, बचपन में अजय-किनारे वाले वन में उन्होंने विशेष प्रकार के पतंगे देखे थे--सूर्य के आलोक में खेलने के लिए अधीर और उत्सुक वे पतंगे सूर्योदय के साथ ही जाने कहाँ ढेर-ढेर पहुँचे जाने और थोड़ी देर तक धूप में नाच-कूद करने के बाद धूप बढ़ते ही आनन्द-नृत्य खत्म करके मिट्टी में मिलकर मर जाते...। कर्णपूर का मन ममता से गलार्त हो उठा। उन्होंने जल्दी से उसे गोद में उठा लिया। लोटे में पानी था, बाहरी कमरे में आकर उन्होंने शिशु के मुख में अंजुरी से ढेर सारा पानी उँड़ेल दिया।

इसके बाद उन्होंने शिशु की माता के मुख शुकतृण डाल दिया और अग्नि को समर्पित कर दिया। इस प्रकार दाह-संस्कार का काम समाप्त करके उन्होंने बच्चे को उठाया और उस घर से बाहर निकले।

कर्णपूर फिर से पैतृक-घर में वापस आ गए। सिर्फ वापस ही नहीं आए, बल्कि पूरी तरह संसारी भी बन गए। रसराज से लड़-झगड़कर उन्होंने अपनी विषय-सम्पत्ति व धान रोपने वाली जमीन हथिया ली। ब्राह्मण अधमर्ण से दोनों वक्त जाकर अपनी उधारी का तगादा करते। दोपहर की धूप में सिर पर कपड़ा डालकर खेत-खेत में जाकर धान-रोपण के काम की देखभाल करते हुए घूमते रहते। वाटिका में अपने हाथ से फल-फूलों को चारा देते।

जो बच्चा उठाकर लाए थे, वह अब उनकी आँखों की पुतली था। उसे कभी

भी आँखों से ओझल नहीं होने देते। पूरी सुबह बाहरी कमरे में बैठकर वे शिशु को राह से गुजरते लोग, गाएँ, पालकी में बैठे नव-दम्पत्ति दिखाकर उसका मनोरंजन करते। लोग इशारा करते हुए कहते, कर्णपूर का काण्ड तो देखो, तीर्थ जाकर एक बंधन उठा लाए।रसराज सम्पत्ति गँवाकर मुहल्ले-दर-मुहल्ले कहता फिरता, झूठ-मूठ का संन्यासी बना फिरता था, देख तो, आ गया न अपनी असलियत पर। शुभाकांक्षी बन्धु-बांधवों ने कर्णपूर के पुनरागमन पर खुशी जाहिर की।

कर्णपुर यह सब बातें सुनकर भी नहीं सुनते। आजकल शिशु ने टुटी-फूटी बातें करना सीख लिया था। उसके मुँह से आधी-आधूरी बोली सुनकर वे बारह वर्ष पहले का खोया आनन्द फिर पा लेते। उससे भी पहले की बात उन्हें याद हो आती, यानी जब उनकी नवविवाहित पत्नी पहली बार उनसे मिली थीं उन दिनों की कई मधुर स्मृतियाँ वे आज तक नहीं भूले थे। फिर उनके प्रथम पूत्र का जन्मोत्सव ! पति-पत्नी ने मिलकर उसे गोद में उठाकर कितने सुख का अनुभव किया था। अब लगता है, जैसे उनके जीवन को बीस साल पीछे धकेलकर किसी ने सुखद अतीत की पुनरावृत्ति कर दी हो।

शिशु को सम्भालकर नीचे रख दिया। शिशु लगातार हाथ-पैर डुलाता हुआ आगे बढ़ गया—अचानक वह मुँह के बल नीचे गिरने को हुआ कि कर्णपूर ने तत्काल थाम लिया। किसी विपत्ति घटने के अनजाने भय से शिशु की अबोध आँखें फैल-सी गईं...। यह अपना भला भी नहीं समझता, इसी भावना से उनका मन इस छोटे-से पागल के प्रति इस कदर आकृष्ट है।

बंधन इसी तरह जकड़ता है। धीरे-धीरे कई वर्ष बीत गए—शिशु अब सात-आठ साल का बालक हो चुका था। उसकी शरारतों के मारे कर्णपूर को एक पल की शान्ति नसीब नहीं थी। यहाँ की चीज वहाँपटक देता, कभी कुछ कर देता। जिस काम को मना करो, वही काम करने की उसे प्रबल इच्छा होती।

बारिश के दिन कर्णपूर उसे घर में बिठाकर पढ़ाने। पढ़ते-पढ़ते वह छुट्टी लेकर थोड़ी देर के बाद बाहर जाता। देर तक नहीं आता तो कर्णपूर दरवाजे के पास जाकर देखते—बालक मूसलाधार बारिश में आँगन के इस कोने से उस कोने तक खुशी से नाचता फिर रहा है। कर्णपूर डाँटकर बोलते, 'गंदी बात, नीलू। बदमाशी बन्द करो। इधर आ जाओ।'

प्यार से बालक का नाम रखा था नीलमणि।

बालक बारिश से धुले चेहरे को उठाए मुस्कराता हुआ दरवाजे के पास पहुँच

जाता, उससे कठोरता बरतकर उनका मन नहीं मानता। सोचते, कहाँ था इसका ठिकाना ? अगर उस दिन इसे वहाँ सें उठाकर नहीं लाता और गले में पानी न उंड़ेलता तो.....? ममता से उनका मन आर्द्र हो उठता। मुँह से डाँटते हुए वे बालक के गीले बालों को पोंछ देते और दुबारा उसे पढ़ाने बैठ जाते।

जरा-सा अन्यमनस्क हो जाते तो बालक फिर झांसा देकर बाहर निकल जाता। कर्णपूर पोथी से सिर उठाते और बाहर जाकर देखने कि वह दोनों हाथ ऊपर उठाए डाल से टपकने को प्रतीक्षित एक बूँद पानी को पकड़ने के वास्ते एकटक खड़ा है। उसका हाथ पकड़ वे खींचकर अन्दर ले आते।

बालक अच्छी तरह समझतता था कि बाबा उसे कभी पीटेंगे नहीं।

अपने पुत्र का शोक कर्णपूर इसे पाकर भूल चुके थे। सिर्फ किसी-किसी दिन निर्जन दोपहरी में उसके चेहरे की हँसी दूरागत संगीत की तरह कानों में गुँजती महसूस होती। पुरानी स्मृति को तब इसी बालक का प्यार, धूप भरी दोपहरी में आकर धो-पोंछ डालता। कर्णपूर उठाकर जाते और सोए हुए बालक के बालों में चुपचाप उँगलियाँ फेरते, उसके चेहरे की ओर ताकते रहते।

मगर जल्दी ही बालक को लेकर वे एक भारी मुसीबत में फँस गए। वह इतना ज्यादा और इस कदर बिना कारण झूठ बोलता कि कर्णपूर को ग्लानि महसूस होती। झूठ बोलने से क्या नुकसान होता है और सच बोलने से क्या फायदा—इस बारे में कई तरह की कथाएँ व उपदेश सुनाने के बावजूद वे उसे सीधी राह पर नहीं ला सके। वह आजकल कई बातें उनसे छिपाने लगा था—ऐसा पहले नहीं करता था। इससे मन-ही-मन उन्हें कष्ट होता था। इसके अलावा, उसके खिलाफ पड़ोसियों से शिकायतें भी सुननी पड़ती। किसी के पेड़ से नींबू तोड़ता, किसी के पेड़ से आम, तो किसी के लड़के को मारता। कर्णपूर बैठे-बैठे सोचते—किस वंश का है, किस कुल का स्वभाव लेकर पैदा हुआ है, कौन जानें उन्होंने अपने बेटे के ग्यारह साल के दौरान उसकी एक भी शिकायत नहीं सुनी थीं। मगर इस लड़के ने उन्हें अच्छी मुश्किल में डाल दिया था....। धर्मभीरू, सरल स्वभाव कर्णपूर लड़के के इन काण्डों की वजह से मन-ही-मन खूब दुखी होते थे। उसके भविष्य के बारे में सोचकर ही उन्हें डर लगता था। सोचते—पूत के पाँव पालने में ही नजर आ जाते हैं—न जाने किस वंश का लड़का घर में आ पड़ा। भाग्य में क्या बदा है, ईश्वर ही जानें।

कभी बैठे-बैठे सोचते, वे नहीं रहेंगे तो बालक का भरण-पोषण कैसे होगा ? अगर उसे आदमी बनाकर भी वे मरे तो कोई ऐसी व्यवस्था कर जाना चाहते थे, जिससे भविष्य में उसे सांसारिक-कष्ट न हो। किस जमीन की कैसी व्यवस्था

करेगें, व्यापार में कैसे कमाई होगी आदि की चिन्ता में कर्णपूर डूब रहते।

कभी-कभी अचानक जैसे आत्मा-विस्मृत हो उठते। क्या विषय-चिन्ता से ?

मन-ही-मन सोचते, यह सब आसपास क्या जुट गया ? सारा दिन इस चक्कर में वे एक पल मन लगा कर भगवान का नाम भी नहीं ले पाते। प्रौढ़ उम्र में यह दुर्बलता भली तो नहीं'

पड़ोसी रघुनाथ भट्टाचार्य ने शिकायत की, कर्णपूर के पाले बेटे ने उनके घरमें मैना के पिंजड़े को खोलकर पक्षी उड़ा दिया। बेटा घर में आया तो कर्णपूर ने पूछा, 'नीलू, मैंने सुना, तुमने उनकी मैना उड़ा दी ?'

लड़का बोला, 'नहीं बाबा, मैंने नहीं....।'

एक तो अपराध ही कम नहीं था, उस पर उन्हें लगा कि वह झूठ बोल रहा है। कर्णपूर का धैर्य जाता रहा। उसे खूब पीटा।

उसके बाबा उसे मारेंगे, लड़के ने सोचा नहीं था। बाबा के हाथ से उसने किसी दिन मार नहीं खाई थी। उसकी आँखों की विस्मयजनक व भयभीत दृष्टि को अनदेखा कर कर्णपूर उसका हाथ पकड़कर दरवाजे के पास ले गए और बोले, 'निकल जाओ, मेरे घर से दफा हो जाओ। चले जाओ यहाँ से। झूठ बोलने वाले के लिए मेरे घर में जगह नहीं।'

लड़के की निराशा आँखें उन्हें तीर-सी बिंध गई, किंतु उन्होंने उसे बाहर निकालकर दृढ़ हाथों से दरवाजा बंद कर दिया।

आधा दण्ड गुजरते ही उनका मन चंचल हो उठा। उन्होंने बाहरी दरवाजा खोलकर देखा, वहाँ बालक नहीं खड़ा था। उसका नाम लेकर पुकारा, मगर कोई जवाब नहीं मिला। घर से इधर-उधर खोजा, मगर उसका कहीं पता न चला। कर्णपूर अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। शाम का समय है—दूर कहाँ चल गया। वे अपने हाथ से खाना बनाते थे। बालक को डाँटा-फटकारा था, सो उसे खाने में जो पसन्द था, वही बनाने की सोच रहे थे। उसके आने पर रात को उसे प्यार से क्या-क्या सिखाएँगे, यह भी विचार कर रहे थे। बालक को कहीं न पाकर उनके प्राण छटपटा रहे थे। एक बार फिर मुहल्ले के सब घरों में जाकर खोजा, कोई उसका पता न बता सका। रघुनाथ भट्टाचार्य का बेटा शिवानन्द उनके पास वैद्यक-शास्त्र सीखने जाता था। उसने कहा, 'आप घर जाकर खाना बनाइए, मैं उसे अच्छी तरह खोजने जाता हूँ।' इस बीच बालक कहीं घर न आ गया हो, यह सोचकर वे घर आए, पर कहाँ, वह तो लौटा नहीं था।

अब क्या करे—यही सोच रहे थे कि सुना, आँगन के बगल वाली गौशाला में शिवानन्द बार-बार बालक का नाम पुकार रहा था। झटपट वहाँ जाकर देखा,

गोशाला में पुआल के ढेर पर बालक न जाने कब से सोया पड़ा था। शिवानन्द की पुकार सुनकर नींद-भरी आँखें उठाकर वह भाँपने लगा कि माजरा क्या है। पर नींद की खुमारी में कुछ समझ में नहीं आया तो अर्थहीन निगाहों से चारों ओर देखने लगा। कर्णपूर उसके हाथ पकड़कर उठा लाए। फिर खिला-पिला कर बिस्तरे पर लिटा दिया। बालक रूठा हुआ था, सो काफी देर तक कुछ बोला नहीं। कर्णपूर ने प्यार-दुलार कर व फेनी-बताशा खरीदकर देने को कहकर उसे मनाया, तब जाकर वह खुश हुआ।

उस दिन रात को कर्णपूर ने मन ही मन सोचा, कल से इसे थोड़ा-थोड़ा करके भक्ति-ग्रन्थ पढ़ाऊँगा, इससे धीरे-धीरे इसका स्वभाव सुधार जाएगा।

अगले दिन से उन्होंने मौका मिलते ही विभिन्न भक्ति-ग्रंथों के प्रसंग पढ़कर उसे सुनाना आरंभकर दिया। नरोत्तम ठाकुर की प्रार्थना याद करा दी, हर सुबह उठकर बालक को उनके सामने बैठकर प्रार्थना की आवृत्ति करनी पड़ती। भागवत से श्रीकृष्ण की रास-लीला पढ़कर सुनाते। संध्या के समय वे बालक को बुलाकर कहते, 'आराम से बैठ, एक कहानी सुनाता हूँ।

फिर माधवेन्द्रपुरी की कहानी सुनाते।

महाभक्त माधवेन्द्रपुरी ने वृंदावन जाकर शैल-परिक्रमा की और गोविन्द-कुण्ड के वृक्ष-तले संध्या के अँधेरे में निपट अकेले बैठ गए। तभी एक गोपाल-बाल मटका भर दूध लाकर पूरी से बोला,'तुम किसी से भी कुछ माँगते क्यों नहीं हो ? लगता है, सारे दिन से भूखे हो। लो, यह दूध लो।' पुरी ने चकित होकर पूछा, 'तुमने कैसे जाना कि सारे दिन से भूखा हूँ ?' गोपाल-बाल ने मुस्करा कर कहा, 'गाँव की औरतें यहाँ से पानी लेकर गुजरीं तो उन्होंने तुम्हें देखा था। यहाँ कोई भूखा नहीं रहता। उन्होंने ही मुझे दूध से भरा मटका देकर यहाँ भेजा है। मटका यहीं रहा, गाय दुह कर ले जाऊँगा।'

गोपाल-बाल चला गया, मगर मटका लेने दुबारा वापस नहीं आया।....रात को पुरी ने स्वप्न देखा, वही बालक उसका हाथ पकड़कर पास के जंगल में ले गया, बोला, 'देखो पुरी, मैं बहुत दिनों से इसी वन में रहता हूँ। यवनों के आक्रमण के भय से मेरे सेवक मुझे यहाँ छोड़कर भाग गए हैं, कोई देखने नहीं आता। गर्मी-सर्दी बरसात में बहुत कष्ट झेलता हूँ। तुम मेरा कोई बंदोबस्त कर दो। बहुत दिनों से तुम्हारा रास्ता निहारता बैठा हूँ कि माधव कब आकर मेरी सेवा करेगा।'

माधवपुरी ने वहाँ मठ स्थापित किया और उसमें श्रीगोपाल की प्रतिमा बिठा दी।

अगले साल नीलाचल से मलय-चन्दन लाकर प्रतिमा के अंग-अंग में लेप

करेंगे, यह सोचकर झारखण्ड के पथ से पुरी नीलाचल की ओर चल पड़े। चलते-चलते रेमूना में पहुँचकर रात गुजारने के वास्ते वह वहाँ के गोपीनाथ मंदिर में पहुँचे। तब रात काफी हो गयी थी। ठाकुर के भोग लेने का वक्त ! बात-बात में पुरी ने मंदिर के पुजारी से पूछा, 'गोपीनाथ के भोग का क्या इन्तजाम है ?' पुजारी बोला, 'गोपीनाथ के भोग के लिए अमृतकेलि नामक खीर बारह मुख-पात्रो में भरकर संध्या के बाद दिया जाता, अमृत-सा उसका स्पाद है, यह गोपीनाथ के खीर के नाम से प्रसिद्ध है, यह कहीं और नहीं मिलता।' बातचीत के दौरान भोग का शंख-घंटा बज उठा। पुरी ने मन-ही-मन सोचा, 'बिना मांगे कुछ भी प्रसाद में नहीं मिल सकता। बिना स्वाद लिए ऐसे भोग की वृंदावन के मठ की श्रीगोपाल की प्रतिमा के लिए कैसे व्यवस्था करूँगा ?' यह सोचते ही पुरी के मन में लाज हो आयी—श्री कृष्ण की याद कर वह वहाँ से बाहर निकल आए और गाँव के हाट में जाकर बैठ गए।

अयाचित वृतिका पुरी विरक्त-उदास
अयाचित मिला तो खाया वरना उपवास

रात को गोपीनाथ के पुजारी ने सपना देखा। गोपीनाथ स्वयं कह रहे थे, 'सुनो, इस गाँव के हाट में एक संन्यासी बैठा है, नाम है माधवपुरी। उसके लिए भोग का खीर आँचल से ढ़क कर रख दिया है, मेरी लीला की वजह से तुम्हारी नजर उस पर नहीं गयी। उसने सारे दिन से कुछ खाया नहीं। जल्दी से मंदिर का द्वार खोलकर उसे खीर दे आओ।....'

पुजारी ने उसी समय जाकर देखा कि सचमुच प्रतिमा के पास आँचल से ढंका खीर का पात्र रखा है। कौन है वह महापुरुष, जिसके लिए स्वयं ठाकुर को खीर की चोरी करनी पड़ी ? खीर का पात्र लेकर पुजारी गाँव के हाट पहुँचे और उसे खोज निकाला। माधवपुरी अकेले अंधेरे में बैठे-बैठे नाम जप रहे थे। पुजारी ने उनके हाथों में खीर का पात्र दिया और पाँव छूकर बोला, 'त्रिभुवन में तुम्हारे-जैसा भाग्यवान इंसान कोई नहीं। पाँव की धूल लेने दो, उद्धार हो जाए तुम्हारे लिए स्वयं गोपीनाथ ने खीर चुराई है।

बालक ने मन लगाकर शान्ति से कथा सुनी।

अब बार-बार वह उनसे पूछता 'बाबा, कृष्णा कहाँ रहते हैं ? वृंदावन में ?'

हर रोज एक ही सवाल सुन-सुनकर कर्णपूर परेशान होकर कहते, 'हाँ, हाँ, वहीं रहते हैं।'

इसके बाद उसने नयी रट यह लगायी, 'वृंदावन कहाँ है, बाबा। मैं वृंदावन जाऊँगा।'

कर्णपूर ने सोचा, देखता हूँ, इसे तो कुछ भी नहीं हो रहा ! मेरा तो सारा परिश्रम व्यर्थ गया, यह कुछ समझता ही नहीं, सिर्फ बदमाशी और शरारत का शौक !

बालक के बार-बार तगादे से कर्णपूर झुँझला पड़े। कुछ दिनों के बाद एक दूर के गाँव में उन्हें धान की खेत का काम शुरू कराने को जाना पड़ा। पहले ही उन्होंने तय कर रखा था कि बालक जिस तरह दुष्ट होता जा रहा है, उसे साथ लेकर आँखों के नीचे रखना ही ठीक है, एक काम से दो काम सिद्ध हो जाएँगे। कर्णपूर बोले, 'चल नीलू, हम वृंदावन चलें।'

उत्साह के मारे रातों को बालक सोया नहीं गाया। हर रात वह पूछता, 'वहाँ पहुँचने को और कितने दिन रह गए हैं।' गन्तव्य स्थान पर पहुँचे तो संध्या हो गयी थी। उस दिन रात को सोते समय उसने कर्णपूर को परेशान कर दिया, 'मैं कृष्ण को देख सकूँगा, बाबा। कृष्ण गऊएँ कहाँ चराते? कल सुबह उठकर जाऊँगा।'

अगले दिन अपने धान के खेत में जाते समय कर्णपूर उसे साथ लेकर चल पड़े और खेत से कुछ दूर राह-किनारे बिठाकर बोले, 'यहाँ चुपचाप बैठे रहो, कृष्ण इसी राह से गुजरेंगे। यहाँ से उठकर इधर-उधर गए तो उन्हें देख नहीं पाओगे। चुपचाप बैठे रहना...।'

संध्या से कुछ पहले खेत का काम खत्म करके कर्णपूर बालक को लेने आए। उन्हें देखकर वह बडे उत्साह से बोला, 'मैंने देख लिया, बाबा। थोड़ी देर पहले ही कृष्ण गायों का झुण्ड चराकर यहाँ से गुजरे थे। तुम इतनी देर से कहाँ थे? तुम तो उन्हें देख ही नहीं पाए।'

कर्णपूर समझ गए, निर्बोध बालक ने गाँव के किसी चरवाहे को गायों का झुण्ड लेकर जाते देखा होगा। बोले, चलो, 'अब घर, चलो। मैंने कई बार देखा है। तुमने देख लिया, यह अच्छा हुआ।'

अगले दिन से बालक लगभग हर रोज बाबा के साथ मैदान जाता और राह-किनारे निर्दिष्ट स्थान पर बैठे जाता। रोज बाप से कहता, 'क्यों बाबा, शाम के समय तुम यहाँ क्यों नहीं होते, कृष्ण को देखते क्यों नहीं।' किसी-किसी दिन कहता, 'कल मेरी ओर ताक कृष्ण ने कहा था, चलो न, गाएं चराएं। मैं तुमसे बिना पूछे जा नहीं सका। कल चला जाऊँ, बाबा ?'

हर रोज एक ही बात सुनकर कर्णपूर के मन में खटका हुआ। बालक जिस तरह की बातें करता था, उससे ऐसा भी नहीं लगता था कि वह झूठ बोल रहा है। आखिर चक्कर क्या है ? एक दिन बालक से बोले 'अब की बार कृष्ण आए' तो मुझे खेत से बुला लेना, मैं भी आकर उन्हें देखूँगा।'

संध्या से पहले बालक तीर-सा भागता आया और हाँफकर बोला, 'जल्दी चलो, बाबा। कृष्ण आए हैं।'

कर्णपूर बालक के पीछे-पीछे चलते हुए राह किनारे जा पहुचे। कहीं कोई नहीं था, मैदान-किनारे राह सूनी पड़ी थी।... मगर बालक ने दोनों हाथ उठाकर खूब बत्साह से कहा, 'ये देखो, बाबा, गायों का झुण्ड। यह रहे....यह देखो...आए हैं।'

कर्णपूर बोले, 'कौन....कहाँ ?' उन्हें कुछ भी नजर नहीं आ रहा था।'

बालक बोला, 'अबकी बार देखा, बाबा ? देख रहे हो, कितनी गाएँ है ? ....ये देखो, कृष्णा ने कैसी पोशाक पहन रखी है ?'

कर्णपूर चकित हो गए। बालक की ओर ताककर देखा, वह कौतूहल पूर्ण नजरों से उत्तेजित-सा जनशून्य राह की ओर देखे जा रहा था। सोचा, यह दिमाग खराब होने के लक्षण तो नहीं। तभी अचानक कर्णपूर के कानों का लगा, उस निर्जन राह से जैसे अदृश्य गायों के झुण्ड को कोई हाँक कर ले जा रहा है, और जैसे इसी के साथ-साथ अदृश्य बाँसुरी की तान उनके सामने बाली राह से लगातार बजती चती जा रही है....बेहद मद्धम स्वर में, मगर बिलकुल स्पष्ट।

अपूर्व मधुर तान ! जीवन में ऐसी तान उन्होंने कभी सुनी नहीं थी।

कर्णपुर का सारा शरीर सिहरकर रोमांचित हो उठा।

बाँसुरी का स्वर लगातार बजता हुआ क्रमशः दूर होता चला जा रहा था। धीरे-धीरे और भी दूर होकर फूलों के वन में जाकर खो गया।

बालक बोला, 'देख लिया न, बाबा ! तुम क्या सोचते थे, मैं झूठ बोलता था?'

कर्णपूर चित्र-लिखित से खड़े रहे।

●

अभिशप्त

मेरे जीवन में वही एक अद्भुत घटना उस बार घटी थी।

यह तीन साल पहले की बात है। मुझे बारिशाल के उस पार एक काम के सिलसिले में जाना पड़ा था।

उस अंचल के एक गंज से लगभग बारह बजे मैं नौका में चढ़ा। मेरे साथ नौका में बारिशाल के एक सज्जन थे। उनके साथ गप्पबाली में समय बीतने लगा।

'पूजा' के बाद का समय था। सारा दिन बदली छायी रही। बीच-बीच में बूँद-बूँद बारिश भी शुरू हो गयी। शाम के समय, लेकिन आकाश कुछ साफ हो गया। टूटी-फूटी बदलियों में से चतुर्दशी के चाँद के जरा-जरा-सा प्रकाश छितराने लगा।

सन्ध्या के समय हम बड़ी नदी से निकलकर एक दरार में जा पड़े। पता चला, यह दरार यहाँ से आरंभ होकर नोआखली के उत्तर में एकदम मेघना नदी से जाकर मिली थी। पूर्व-वंग में यह मेरा नया-नया ही जाना हुआ था। आँखों को सब-कुछ नया-नया-सा लग रहा था। कम चौड़ी दरार के दोनों किनारे के बारिश से नहाए जंगल में बदलियों से आधे ढंके चतुर्दशी के चाँद की चाँदनी झिलमिला रही थी। कहीं-कहीं नदी किनारे बड़े मैदान थे। जंगली लताओं के झुण्ड दरार के पानी में झुक-झुक आए थे।....बाहर जरा-सी ठण्ड थी, फिर भी मैं छप्पर के ऊपर बैठा बाहरी दृश्य देखता हुआ जा रहा था।.....बरिशाल का यह हिस्सा सुन्दरवन के आसपास था, छोटी-छोटी दरारें, नदियाँ, उपनदियाँ चारों ओर फैली हुई थीं। समुद्र ज्यादा दूर नहीं था। दस-पन्द्रह मील दक्षिण-पश्चिम में ही हातिया और संद्वीप थे।

रात जरा-सा और हुई। दरार के दोनों किनारों के निर्जन जंगल अस्फुट ज्योत्स्ना में बेहद मोहक प्रतीत हो रहे थे। इस हिस्से में लोगों का बसाव बिलकुल नहीं था। सिर्फ था सघन वन और पानी के किनारे-बड़े-बड़े वृक्ष!

मेरे साथी ने कहा, 'इतनी रात में ज्यादा देर तक बाहर मत बैठिए। आइए छप्पर के अंदर आ जाइए। इन जंगलों में...समझ रहे हैं न।'

और वे सुन्दरवन की किस्म-किस्म की कथाएँ सुनाने लगे। उनके एक चाचा

फारेस्ट डिपार्टमेंट में काम करते थे, उन्हीं के साथ वे कभी सुन्दरवन के विभिन्न हिस्सों में खूब घूमे थे। उसी से संबंधित थीं उनकी कथाएं।

रात के लगभग बारह बज रहे थे।

हमारी नौका का कुल जमा एक ही माझी था। वह बोल पड़ा, 'बाबू, जरा-सा आगे चलकर बड़ी-सी नदी पड़ेगी। इतनी रात गए अकेले उस नदी में पतवार चलाना मेरे बस में नहीं। सो यहीं नौका बाँधता हूँ।'

नौका वहीं बाँधी गयी। इधर बड़े-बड़े पेड़ों के पीछे चाँद डूब गया था। संकरी दरार के दोनों किनारे के घने जंगल अंधेरे में ढंके हुए थे। चारों ओर कोई आवाज नहीं...पतंगे तक चुप पड़े थे।

साथी से कहा, 'महाशय, यह तो संकरी दरार है—किनारे से बाघ छलाँग लगाकर तो नौका में नहीं घुस आएगा?'

साथी बोला, 'नहीं घुस आया तो आश्चर्य ही होगा।'

सुनकर छुई-मुई-सा सिकुड़ गया।

साथी बोला, 'चलिए, थोड़ा लेट लिया जाए। नींद तो आएगी नहीं, फिर सोना उचित भी नहीं। चलिए, बस, जरा-सी आँखें मूँद लें।'

कुछ देर चुपचाप पड़े रहे। फिर साथी को पुकारने को हुआ तो देखा कि वे सो गए हैं। माझी भी जगा हुआ हो, ऐसा नहीं लगा। सोचा, मैं ही क्यों आँखें खोले पड़ा रहा हूँ—मैंने भी महाजनों के पथ का अनुसरण करना ही उचित समझा।

इसके बाद जो घटा, वह मेरे जीवन की अद्‌भुत जानकारी रही। दुबारा लेटने जा रहा था कि अचानक मेरे कानों को लगा, अंधकारमय जंगल के उस तरफ बहुत दूर घने जंगल में जैसे कहीं कोई ग्रामोफोन बजा रहा हो।...झटपट उठकर बैठ गया। ग्रामोफोन? इस जंगल में इतनी रात गए ग्रामोफोन कौन बजा रहा है? कान लगाकर सुना, ग्रामोफोन नहीं, अंधेरे में वृक्ष जहाँ सघन होकर खड़े थे, वहाँ न जाने कौन जैसे ऊँचे गले से आर्त-करुण स्वर में कुछ बोल रहे थे...। कुछ देर तक सुनने के बाद लगा, यह एक से अधिक लोगों का समवेत कण्ठ-स्वर है। पड़ोसी की छत पर ग्रामोफोन बजने से जैसे कुछ स्पष्ट, कुछ अस्पष्ट, मगर लगातार स्वर की लहरें कानों में पहुँचती हैं—यह स्वर भी लगभग वैसा ही था। लगा, जैसे बंगला भाषा के कई अस्पष्ट शब्द भी कानों में आ रहे हों—मगर समझ में नहीं आया कि क्या बात है? स्वर एकाध मिनट तक ही स्थाई रहे, उसके बाद अंधेरी वनभूमि जैसी पहले निस्तब्ध थीं, दुबारा वैसी ही निस्तब्ध हो गई...। मैं झटपट छप्पर से बाहर निकला। चारों तरफ अंधकार छाया हुआ था। वनभूमि नीरव थी, सिर्फ नौका के तल से भाटे का पानी कल-कल करता बह रहा था। अन्तिम पहर की हवा में

पानी-किनारे के झुरमुटों से एक तरह का अस्पष्ट स्वर निकल रहा था। किनारे से दूर बड़े-बड़े वृक्षों के काले तने अंधेरे में अजीब-सा आकार बना रहे थे।

जी में आया, साथियों को पुकारकर जगा दूँ। फिर सोचा, बेचारे सो रहे हैं, पुकारकर क्या होगा, इससे बेहतर तो यही है कि मैं खुद ही जगा रहूँ। खड़े-खड़े एक सिगरेट सुलगा लिया, फिर जैसे ही छप्पर में घुसने को हुआ कि तभी अंधकारमय विशाल वनभूमि के किसी हिस्से से अस्पष्ट ऊँचा आर्त-करुण तीक्ष्ण स्वर तीर की तरह अंधेरे के सीने को चीरता हुआ आकाश की ओर उठा–'ओ नौका-यात्रियों, तुम कौन लोग जा रहे हो...हमारी साँस घुटी जा रही है...हम मर रहे हैं...हमें उठाओ, उठाओ...हमें बचाओ।'

नौका का माझी हड़बड़ाकर जाग पड़ा। मैंने साथी को पुकारा, 'महाशय, ओ महाशय, उठिए-उठिए।'

माझी मेरे पास धँसता चला आया, डर के मारे उसकी घिग्घी बँध गई थी। बोला, 'अल्ला-अल्ला, बाबू, सुना न आपने?'

साथी ने उठकर पूछा, 'क्या हुआ, महाशय ? पुकारा क्यों ? कोई जानवर तो नहीं आ गया।'

मैंने सारा वृतांत कह सुनाया। वे भी झटपट छप्पर से बाहर निकले। तीनों जनों ने मिलकर कान खड़े किएं चारों और पुनः चुप्पी छा गई थी....भाटे का पानी नौका के तल से टकराकर पहले से अधिक शोर कर रहा था। साथी ने माझी से पूछा, 'तो यह क्या....।'

माझी बोला, 'हाँ बाबू, बाईं ओर ही हैं कीर्तिपाशा का गढ़।'

साथी बोला, 'तो तुमने इतनी रात गए यहाँ नौका बाँधी क्यों ? बेवकूफ कहीं का...।'

माझी बोला, 'तीन जने हैं, इसलिए बाँधी थी। भाटे के खिंचाव से नौका को पीछे ले जाना भी सम्भव नहीं था।'

भय से इतना नहीं, जितना विस्मय से मेरा बुरा हाल था। साथी बोला, 'सुनो माझी, जल्दी से किरासन की डिबरी जला लो! रोशनी जलाकर बैठते हैं, अभी काफी रात है।'

मैंने माझी से कहा, 'तूने भी आवाज सुनी थी ?'

वह बोला, 'हाँ बाबू, आवाज कान में जाते ही तो मेरी नींद टूट गई। मैंने पहले भी दो बार यहाँ से नौका खेते हुए यह आवाज सुनी है।'

साथी बोला, 'यह इस अंचल की एक अद्भुत घटना है। यों यह जगह सुन्दरवन के सीमा में होने की वजह से यहाँ कोई बस्ती नहीं है, सिर्फ नौका चलाने

वाले माझियों में ही यह घटना चर्चित है। इस घटना के पीछे एक इतिहास है, जिससे माझी परिचित नहीं। सुनिए, वो इतिहास मैं आपको सुनाता हूँ।'

अगले पल धुआँ उगलती किरासन की डिबरी की रोशनी में अंधेरे वन के बीचोंबीच नदी के मुख से कीर्तिपाशा गढ़ का इतिहास सुनने लगा।

तीन सौ साल पहले की बात है। मुनीम खाँ तब गौड़ का सूबेदार था। इस अंचल में तब बारमुई के दो प्रतापी भुइयाँ राजा रामचन्द्र राय और इशा खाँ मसनद-ए अली की खूब धूम थी। मेघना नदी के मुहाने के बाहर ही समुद्र के जिस क्षेत्र को आजकल संद्वीप-चैनल कहा जाता है, वहाँ उन दिनों मग व पुर्तगाली जल-दस्यु शिकार की खोज में चील की तरह मंडराते रहते थे।

उस समय यहाँ ऐसा जंगल नहीं था। यह सारी जगह तब कीर्तिराय के अधिकार में थी। यहाँ उनका सुदृढ़ दुर्ग था—मग जलदस्युओं के साथ वे कई बार लड़े थे। उनके अधीन सैन्य-सामन्त, कमान और युद्ध का सरो-सामान सब-कुछ था। संद्वीप तब पुर्तगाली जलदस्युओं का प्रधान अड्डा था। उनके आक्रमण से आत्मरक्षा करने के वास्ते इस अंचल के सारे जमींदारों को अपना सैन्य बल मजबूत करके रखना होता था। इस वन के पश्चिमी सिरे से तब एक और दरार निकलकर बड़ी नदी में गिरती थी, वन में उस दरार का निशान अब भी मौजूद था।

कीर्तिराय अत्यन्त अत्याचारी एवं दुर्द्धर्ष जमींदार थे। उनके राज्य में ऐसी सुन्दर लड़कियाँ कम ही थीं, जो उनके अन्तःपुर में एक बार न घुसी हों। इसके अलावा वे खुद भी एक तरह से जलदस्यु थे। उनके कई तेज गति वाली नौकाएँ थीं। आसपास की जमींदारियों में ही नहीं, अपनी जमींदारी में भी धनवान गृहस्थ की धन-दौलत व पत्नी-बेटी लूट लेना उनके लिए आम बात थी।

कीर्तिराय के बगल वाली जमींदारी कीर्तिराय के एक मित्र की थी। वे चन्द्रद्वीप के राजा रामचन्द्र राय के पत्तीदार थे। यह दीगर है कि उन अनेक पत्तीदारों की क्षमता व शक्ति आज के स्वाधीन राजाओं से भी ज्यादा थी। कीर्तिराय के मित्र के मर जाने के बाद उनके तरूण-वयस्क नरनारायण राय ने पिता की जमींदारी का भार सम्भाला। नरनारायण ने तब नया-नया ही यौवन में पदार्पण किया था। एक ही सुपुरुष, अत्यन्त वीर व शक्तिमान ! नरनारायण कीर्तिराय के पुत्र चंचल राय का समवयसी व मित्र था।

एक बार कीर्तिराय के निमन्त्रण पर नारायण राय उनके राज्य में कुछ दिनों के लिए घूमने आए। चंचल राय की तरूणी पत्नी लक्ष्मी देवी स्वामी के मित्र

नरनारायण को देवर की तरह स्नेह की दृष्टि से देखती थी। लेकिन दो-एक दिन में ही उस स्नेह की चोट से नरनारायण विव्रत हो उठे। नरनारायण राय तरुण-वयस्क होते हुए भी जरा गम्भीर प्रकृति के थे। विद्युत-चंचला तरूणी मित्र-पत्नी के व्यंग-परिहास से गम्भीर-प्रकृति के नरनारायण को सम्मान बचाकर चलना मुश्किल हो गया। नहाकर बाहर निकले हैं, सिर का ताज खोजने पर भी नहीं मिलता, कई जगह तलाश करके हैरान होने के बाद उसकी आशा छोड़कर बैठे हैं, हठात् अपना तकिया उठाते हैं तो देखते हैं उसीके नीचे ताज दबा पड़ा है। ताज्जुब यह कि इसके पहले भी वे तकिए के नीचे खोज चुके होते थे....। उनकी प्रिय तलवार दोपहर से शाम तक पाँच बार खो चुकी है, और पाँचों बार किसी अप्रत्याशित स्थान में पड़ी मिली है। पान में ऐसे द्रव्यों का समावेश होने लगा, जो कभी भी पान में नहीं पड़े थे। मित्र-पत्नी को किसी तरह काबू में न कर सके तो अत्याचार-जर्ज़रित नरनारायण ने समझ लिया कि उनके मित्र की पत्नी जरा ढीले दिमाग की है। मित्र की दुर्दशा से चंचल राय मन ही मन खूब खुश थे, फिर भी पत्नी से बोले, 'दो दिन के लिए आया है बेचारा—उसे तुमने जिस तरह परेशान कर रखा है, उससे तो वह यहाँ कभी नहीं आएगा।'

कुछ दिन इसी तरह गुजर गए। कीर्तिराय के आदेश से चंचल राय को किसी काम से अचानक गौड़ की यात्रा करनी पड़ी। नरनारायण राय ने भी इस डर से कि मित्र-पत्नी न जाने कब क्या कर बैठे, कुछ दिन तक सशंक स्थिति में वक्त गुजारा कर अपने बजरे में जाकर पनाह ली। जाते समय लक्ष्मी देवी ने कह दिया, 'इस बार जब दुबारा आओ भैया, तो एक विश्वासी आदमी साथ में ले आना, जो रात-दिन तुम्हारी चीजों की चौकीदारी करता रहे। समझा न।'

नरनारायण राय का बजरा रायमंगल का मुहाना पार कर कुछ आगे बढ़ा ही था कि जलदस्युओं ने आक्रमण कर दिया। तब दोपहर का वक्त था। तीखी धूप बजरे के दक्षिण की तरफ दूर तक फैले पानी में शानचढ़ी तलवार की तरह झिलमिला रही थी। समुद्र के इस हिस्से में कोई नौका नहीं थी, जो सहायता के लिए आती। वह रायमंगल और कालाबंदर नदियों का मुहाना था। सामने ही था विशाल समुद्र—संद्वीप चैनल—जलदस्युओं की प्रधान घाटी। नरनारायण के बजरे के कुछ रक्षक मारे गए, कुछ गम्भीर रूप से घायल हुए। खुद नरनारायण दस्युओं के आक्रमण का मुकाबला करने गए तो पीठ में आघात खाकर बेहोश हो गए।

होश आने पर नरनारायण ने देखा, वे एक अंधेरी जगह में लेटे हुए हैं। उनके सामने एक बड़े नक्षत्र की भाँति कुछ चमक रहा था...। कुछ देर के बाद आँखों की पलकें झपकाईं, तब उन्हें पता चला कि जिसे वे नक्षत्र समझ रहे थे, वह

एक गवाक्ष था, जिसमें से रोशनी छन कर आ रही थी। नरनारायण ने देखा, वे एक अंधेरे कक्ष के गीले फर्श पर पड़े हुए हैं, कमरे की दीवारों में जगह-जगह हरी काई जमी हुई थी।

कुछ दिन और बीत गए, कुछ रातें और कट गयीं। उनके लिए कोई खाने को कुछ नहीं लाया। उन्हें लगा, जो लोग यहाँ लाए हैं, उनका उद्देश्य उन्हें भूखों मारना ही है। सामने मृत्यु थी ! निर्मम मृत्यु।

वह दिन भी बीत गया। आघात का दर्द और भूख-प्यास के मारे नरनारायण की देह अवसन्न पड़ गई थी। गवाक्ष से आने वाली रोशनी आँखों में धुँधली पड़ती जा रही थी...। उन्होंने अंधेरे कमरे की गीली शैया पर भूख से आकुल-अलसायी देह को ढीला छोड़ दिया और अधीरता से मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे...। प्रकृति में एक तरह का क्लोरोफ़ार्म होता है, यंत्रणा सहकर जो मरता है, ऐसे प्राणी को मृत्यु-यंत्रणा से बचाने के लिए वह मुमुर्षु प्राणी को अभिभूत करता है। धीरे-धीरे जैसे उसी दयामयी मृत्यु-तंद्रा ने आकर उन्हें सहारा दिया। बहुत देर के बाद, कितनी देर के बाद, यह उन्हें मालूम नहीं हो सका—अचानक आँखों में रोशनी पड़ने से उनकी घोरतंद्रा भंग हुई। विस्मित नरनारायण ने आँखें मलकर देखा, उनके सामने हाथ में दिया लिए मित्र-पत्नी लक्ष्मी देवी खड़ी थी। कुछ कहने ही जा रहे थे कि लक्ष्मी का इशारा पाकर चुप रह गए। लक्ष्मी देवी ने दिए को आँचल से ढंक दिया और नरनारायण को उँगली से अनुसरण करने का इशारा किया। एक बार नरनारायण को सन्देह हुआ—यह स्वप्न तो नहीं ? मगर नहीं, दिए के प्रकाश में आर्द्र दीवारों पर हरी काई के झुण्ड साफ नजर आ रहे थे....।

नरनारायण शक्तिशाली युवक थे, भूख से दुर्बल हो जाने के बावजूद निश्चित मृत्यु के ग्रास से बच जाने के उत्साह से वे दृढ़ कदमों से तेज-तेज चल रही मित्र-पत्नी के पीछे-पीछे चल पड़े। पत्थर की एक वक्रगति सीढ़ी से ऊपर चढ़कर एक दीर्घ सुरंग पार की तो उन्होंने देखा, वे अपने कीर्तिराय के प्रासाद के सामने वाली नदी के किनारे आ पहुँचे हैं। लक्ष्मी ने बेंत की बुनी एक छोटी टोकरी उन्हें देकर कहा, 'इसमें खाने को है, यहाँ मत खाना। तुम तैरना जानते हो, नदी पार कर उस पार जाकर कुछ खा लेना। फिर जितनी जल्दी हो सके, भाग जाना।'

चक्कर क्या है, नारायण राय को कुछ-कुछ समझ में आया। उनकी विस्तृत जमींदारी कीर्तिराय की जमींदारी के बगल में ही थी और उनके न रहने से कीर्तिराय ही दनुजमर्द्दन देव के वंशधरों का भावी पतीदार था। इतनी बड़ी विस्तृत भू-सम्पत्ति, सैन्य-सामन्त कीर्तिराय के हाथ में आए तो फिर उन्हें और क्या चाहिए? कीर्तिराय जो सिर झुकाए हुए थे, उसका क्या यह कारण नहीं था कि

उनके एक तरफ बाकला और चन्द्रद्वीप था—दूसरी तरफ भुलुआ का महाप्रतापी भुइयाँ राजा लक्ष्मण माणिक्य था ?

दिए के प्रकाश में नरनारायण ने देखा, उनकी मित्र-पत्नी के चेहरे पर कुटिल हास्य का जरा भी चिह्न नहीं। चेहरे पर चिन्ता की रेखा खिंच आई थी और मातृ-स्नेह की कोमलता। उनके चारों तरफ गहन अंधेरा था ऊपर आकाश में उजलापन था। पास ही नदी का पानी भाटे के खिंचाव से किनारे के पौधों को कँपकँपाता तेजी से बड़ी नदी में मिलने जा रहा था। नरनारायण ने भाव-विभोर होकर पूछा, 'बहू ठकुरानी, क्या इसमें चंचल भी सम्मिलित हैं ?'

लक्ष्मी देवी बोली, 'नहीं भैया, वे कुछ नहीं जानते। यह सब ससुर जी का किया-धरा है। अब मुझे लगता है, इसी कारण उन्हें कहीं और भेज दिया गया था। गौड़-वौड़ जाने की बात झूठ है।'

नरनारायण ने देखा, दुख और लज्जा से मित्र-पत्नी का चेहरा विवर्ण हो गया था। लक्ष्मी देवी आगे बोली, 'मुझे आज पता चला। कारागार का सरदार मुझे माँ कहता है, उससे आधी रात को सारे पहरे हटा देने को कहा था। तभी तो....।'

नरनारायण बोले, 'बहू-ठकुरानी, मेरी एक बहन बचपन में ही चल बसी थी, तुम मेरी वही बहन हो, आज वापस मिली हो।'

लक्ष्मी देवी के पद्म-से मुखड़े पर आँखों का पानी उमड़ आया। जरा-सा अचकचाकर बोली, 'भाई, कहने का साहस नहीं होता, फिर भी एक बात कहती हूँ। अगर मुझे बहन मानते हो तो....।' नारायण ने पूछा, क्या कहना चाहती हो बोलो बहू ठकुरानी। देवी बोली तुम वचन देकर जाओ कि मेरे ससुर का कभी बुरा नहीं चाहोगे।

नरनारायण ने पल भर कुछ सोचा, फिर बोले, 'तुमने मेरी जिन्दगी बचाई है बहू-ठकुरानी, मैं वचन देकर जाता हूँ, जब तक तुम जिन्दा हो, तुम्हारे ससुर का कोई अनिष्ट नहीं सोचूँगा।'

विदा होते वक्त नरनारायण ने एक बार पूछा, 'बहू-ठकुरानी, तुम वापस जा सकोगी न ?'

लक्ष्मी देवी बोली, 'मैं सही-सलामत चली जाऊँगी। तुमसे जितना दूर हो सके, तैरकर जले जाओ।'

नरनारायण राय अंधेरे में चुपचाप नदी के पानी में घुसे, और अगले पल गायब हो गए।

लक्ष्मी देवी का दिया हवा में कब का बुझ चुका था—वह अंधेरे में ससुर के

गढ़ की ओर चली जा रही थी। जरा दूर जाते ही उसने देखा, वगल वाली दरार में दो नौकाएँ मशाल के प्रकाश में सज रही है। भय से उसकी छाती का खून सूख गया। सर्वनाश ! क्या इन्हें मालूम हो गया ? तेज कदमों से आगे बढ़कर गुप्त सुरंग के मुहाने पहुँची तो देखा कि सुरंग का पथ खुला ही हुआ है। वह जल्दी से सुरंग में प्रविष्ट हो गयी।

कीर्तिराय मानते थे कि अपने हाथ की उँगली अगर विषाक्त हो जाए तो उसे काट देना ही शरीर की रक्षा के लिए मंगलकारी है....। अगले दिन फिर सूरज उदय हुआ, लेकिन लक्ष्मी देवी को फिर किसी दिन कोई देख नहीं पाया। रात के हिंस्र अंधकार ने उसे ग्रास बनाकर निगल लिया था....।

नरनारायण राय ने अपनी राजधानी पहुँचकर सब सुना—कि गुप्त सुरंग के दोनों सिरों को बन्द कर कीर्तिराय ने अपनी पुत्रवधु को घोंटकर मार डाला था ....। इसके कुछ दिनों के बाद उन्होंने सुना—लक्ष्मण राय की बेटी के साथ चंचल की जल्दी ही शादी होगी।

उस दिन रात को चाँद उगा तो अपने प्रासाद की छत पर चहल-कदमी करते हुए नरनारायण शुभ्र अनुपम प्रकाश का सागर देख रहे थे, कि तभी उनकी आँखों की पलके भीग उठीं। उन्हें लगा, उनकी अभागिनी बहू-ठकुरानी के हृदय से निकली निष्पाप, निष्कलंक व पवित्र स्नेह की लहरों से सारा विश्व डूबा जा रहा हैं। मानो, उसके अन्तर की श्यामलता से ज्योत्स्ना-धुली वनभूमि का अंग-अंग श्यामल-सुन्दर व श्रीयुक्त हो उठा है...नीरव आकाश के तले उसकी आँखों की शरारती मुस्कराहट ही तारे-तारे में हीरे-मोती की तरह झिलमिला रही है...। नरनारायण राय के पुरखे-पूर्वज थे दुर्द्धष भूमाधिकारी दस्यु—अचानक पुरखे-पूर्वजों का वही बर्बर खून नरनारायण की धमनियों में क्रौंध उठा। दे मन-ही-मन बोले—मैं अपना अपमान एक तरह से भुला बैठा था, बहू-ठकुरानी। मगर तुम्हारा अपमान मैं कभी भी बर्दाश्त नहीं करूँगा।

कुछ दिन बीत गए। फिर एक दिन एक ठण्ड की भोर जब रात का कुहासा काटकर प्रगट हुई तो देखा गया—कीर्तिराय के गढ़ की नहर नौकाओं, बजरों और जहाजों से भरी हुई है। तोप की आवाजों से कीर्तिराय के प्रासाद-दुर्ग की दीवारें भरभरा कर काँपने लगीं। कीर्तिराय ने सुना, आक्रमणकारी नरनारायण राय हैं, उनके साथ पुर्तगाली जलदस्यु भी आया है। दोनों की सम्मिलित वाहिनी आसपास की चालीस उपनदिया-दरारों से चढ़ आई थी। वाहिनी का एक बड़ा भाग मुख्य नदी में भी तैयार खड़ा था।

इस आक्रमण के लिए कीर्तिराय पहले से ही प्रसतुत थे—केवल प्रस्तुत नहीं

थे तो नरनारायण को मिलने वाली पुर्तगाली दस्यु गंजालेस की मदद के लिए। राजा रामचन्द्रराय व राजा लक्ष्मण माणिक्य के साथ गंजालेस की कई सालों से शत्रुता चली आ रही थी। इस हालत में गंजालेस नरनारायण राय की मदद करेगा, यह कीर्तिराय के लिए कल्पनातीत घटना थी। फिर भी मुकाबला तो करना था, सो कीर्तिराय के गढ़ से भी तोपें चलीं।

गंजालेस एक ही सुदक्ष नौ-वीर था। उसके निर्देशन में दस नौकाएँ गढ़ के बगल वाली छोटी दरार से अन्दर घुसीं तो कीर्तिराय के आदमियों ने मुकाबला किया। गढ़ की कमान उस तरफ इस कदर प्रखर थी कि दरार के मुहाने पर खड़े रहने से लोग मर जाते। गंजालेस ने दो कमानवाही नौकाएँ छोटी दरार में रहने दीं, और बाकी को वहाँ से लाकर पीछे जा खड़ा हुआ। गंजालेस के अधीनस्थ अन्यतम जलदस्यु माइकल रोजारियो डि-वेरो को यह छोटा बेड़ा दरार के मार्ग से ले जाकर गढ़ के पश्चिमी हिस्से से आक्रमण करने का आदेश मिला।

अकल्पित आक्रमण से कीर्तिराय की जल-सेना शत्रु-बेड़े द्वारा दोनों ओर से दरार में घिर गई। बाहर नदी की ओर निकलकर युद्ध में शरीक होने की क्षमता उनमें बाकी नहीं रही। फिर भी उनके प्रतिरोध की वजह से रोजारियो काफी देर तक कुछ कर नहीं सका। कीर्तिराय का नौ-बेड़ा दुर्बल नहीं था, कीर्तिराय के गढ़ से पुर्तगाली जलदस्युओं का अड्डा संद्वीप बहुत दूर नहीं था, इस वजह से कीर्तिराय ने नौ-बेड़े को ताकतवर बना रखा था।

दोपहर को रोजारियो की कमान के सामने गढ़ की पश्चिमी दिशा एकदम शान्त पड़ गई...। नरनारायण ने देखा, सारी नौकाएँ दरार में चुप-चाप खड़ी हैं, कीर्तिराय के गढ़ की सारी कमाने चुप हैं। नदी के दोनों किनारों पर संध्या उतर आई थी। निस्तब्ध नील आकाश में केवल एक खामोशी कीर्तिराय के गढ़ के चक्राकार घूम रही थी...अचानक विजयोन्मत्त नरनारायण राय की आँखों के सामने मित्र-पत्नी की विदा का रात का सांध्य पद्म-सा विषादमय चेहरा और अनुनय करती उसकी दो आँखों कौंध गईं—दिल में दर्द की एक तेज हूक उठी ....। उन्होंने क्या किया ! क्या इसी तरह वे अपनी स्नेहमयी प्राणदात्री का अनुरोध रखने आए थे।

नरनारायण ने हुक्म जारी किया—कीर्तिराय के परिवार का एक भी प्राणी मारा न जाए।

थोड़ी देर बाद ही समाचार मिला, गढ़ में कोई नही। नरनारायण राय विस्मित हुए। वे उसी समय गढ़ में प्रविष्ट हुए। उन्होंने व गंजालेस ने गढ़ के एक-एक हिस्से को छान मारा—सचमुच कहीं कोई नहीं था। पुर्तगाली बेड़े के लोग

गढ़ में लूटपाट करने को घुसे तो देखा कि मूल्यवान द्रव्यादि विशेष कुछ नहीं। अगले दिन दोपहर तक लूटपाट चली....कीर्तिराय के परिवार का एक भी प्राणी नहीं मिला। दोपहर बाद केवल दो नौकाओं को दरार के मुहाने पर पहरे पर बिठाकर नरनारायण राय वहाँ से वापस चल पड़े।

इस घटना के कुछ दिनों के बाद, जब पुर्तगाली जलदस्यु लूटपाट करके चले गए, कीर्तिराय के एक कर्मचारी ने गढ़ में प्रवेश किया। आक्रमण के दिन सुबह ही यही आदमी गढ़ से कुछ अन्य लोगों के साथ भाग गया था। घूमते-घूमते एक बड़े खम्भे की आड़ में उसने देखा, कोई एक आहत मुमुर्षु व्यक्ति उसे बुलाकर कुछ कहने की कोशिश कर रहा है। पास जाकर उसने उस व्यक्ति को पहचाना—वह कीर्तिराय के परिवार का पुराना विश्वस्त कर्मचारी था। उसके मृत्युकालीन अस्पष्ट बोलों से आगन्तुक कर्मचारी ने थोड़ा-बहुत जो कुछ समझा, उससे उसका दिमाग चकरा गया। उसे पता चला, कीर्तिराय अपने परिवार-जनों व धनरत्न के साथ धरती के नीचे एक गुप्त स्थान में जा छिपे थे, और एक वही व्यक्ति उन तक जाने की राह जानता है। पहले जमाने में धरती के नीचे गुप्त-स्थली प्रायःसभी मकानों में बनाई जाती थी और उसकी व्यवस्था कुछ ऐसी थी कि बाहर से अगर इसे न खोलो तो निकलने का कोई उपाय नहीं रहता...। धरती के नीचे वह गुप्त-स्थली कहाँ है, यह बताने से पहले ही वह आहत व्यक्ति मर गया। बहुत खोजबीन के बाद भी गढ़ के किस हिस्से में वह गुप्त-स्थली थी, यह कोई मालूम न कर सका।

इस प्रकार कीर्तिराय व उनके परिवार-जन भूखे-प्यासे तिल-तिलकर घुटते हुए गढ़ के किस एकान्त भू-गर्भस्थ कक्ष में मारे गए, यह कोई जान न सका.... उस विराट प्रसाद-दुर्ग के पर्वत-समान दबाव में उन हतभागों का हाड़ किस वायु-शून्य अंधेरे भू-कक्ष में राख हो रहा है, किसी को इसकी खबर तक न हुई।

वह छोटी दरार संद्वीप चैनल की खड़ी में ही थी। खाड़ी के किनारे से जरा-सा आगे जाने से गहन जंगल के भीतर कीर्तिराय के गढ़ के विशाल ध्वंस-स्तूप आज भी नजर आते थे। दरार से कुछ आगे दूर जंगल में दो पुराने बकुल-पेड़ नजर आते थे, अब इन बकुल पेड़ो के आस-पास दुर्भेद्य जंगल और झाड़-झंखाड़ का वन था। जबकि पहले यहाँ राजपथ था। थोड़ा और आगे जाने पर एक तालाब नजर आएगा। उसी के दक्षिण में टूटी-फूटी ईंटों के जंगलावृत्त स्तूप पर भग्न पत्थर की प्रतिमाएँ व खम्भे नजर आएँगे। राय-भुइयों के बगले से, राजा प्रतापादित्य राय के बंगले में वर्तमान युग का प्रकाश ताक-झांक का साहस

था। तालाब के जिस ईंटों के सोपान पर सुबह-शाम अतीत के राजपुरुषों के रंगे पाँवों के अलक्तक राग फूटते थे, वहाँ अब दिन के समय बड़े-बड़े बाघों के पाँवों के पंजों के निशान पड़ते थे, विषैले साँपों के दल-के-दल फन उठाए घूमते थे।

बहुत दिनों से यहाँ एक अद्भुत काँड घटता था। आधी रात को गहन वनभूमि जब नीरव हो जाती, बड़े-बड़े पेड़ों के साए जब प्रेतों की तरह खड़े नजर आते...संद्वीप चैनल के ज्वार के लहरों का खारा पानी खाड़ी के मुहाने में जुगुनुओं की तरह जगमग करता, तब दरार से नौका खेते हुए जाते वक्त मधु-संचय करने वालों ने कई बार सुना था, अंधेरे वन के एक गहन हिस्से से जैसे न जाने कौन लोग आर्तस्वर में चीत्कार कर रहे हैं—'ओ पथ से जाने वाले यात्रियों, ओ नौका-यात्रियों....हमारा साँस घुट रहा है...हम मर रहे हैं... मेहरबानी करके हमें बाहर निकालो...अरे, कोई तो सुनो, हमें बाहर निकालो...।'

डर के मारे ज्यादा रात गए इस राह से कोई नौका खेकर नहीं जाना चाहता।

●

मुन्नी का कांड

हरि मुखुयो की बेटी उमा कुछ खा नहीं रही। बिना खाए बहुत दुर्बल हो गई थी।

उमा की उम्र यही सिर्फ चार साल की थी। किन्तु ऐसी शरारती लड़की मुहल्ले भर में खोजे नहीं मिलेगी...। उसकी माँ सुबह उसे दूध पिलाने को कितने भुलावे देतीं, कितनी बातें बनातीं, मगर सब व्यर्थ ! दूध की कटोरी देख वह बाघ की तरह भयभीत हो जाती। माँ के हाथ में दूध की कटोरी देखते ही सीधे एक तरफ फुर्र से भाग जाती। माँ कहती, 'ठहर दुष्ट लड़की, तेरी बदमाशी अभी दूर करती हूँ। दूध नहीं पिएँगी, सूजी नहीं खाएँगी, क्या खाएगी, यह भी कोई नहीं जानता दुनिया में चल, इधर आ...।,

मुन्नी को कोई उपाय नहीं सूझता तो रोना शुरू कर देती। उसकी माँ उसे कसकर पकड़ लेती और गोद में लिटाकर जबरदस्ती दूध पिलाती। किन्तु जबरदस्ती में आधा दूध बिखर जाता और बाकी आधा दूध भी मुन्नी के पेट में ही जाता, कौन जाने।

किसी-किसी समय वह माँ से लड़ती भी। थी तो सिर्फ चार साल की, बिना खाए-पिए हाथ-पाँव भी गल गए थे, किन्तु उसे सलीका सिखाने में माँ का एक-एक दिन बेहद कष्टकारक बीतता। नाराज होकर माँ कहती, 'ठकर जा, आफत-बला कहीं की, मत खाओ मेरी बला से। सारा दिन खट-खट कर मेरा तो खून जम गया, लेकिन इस लड़की से दिन में पाँच बार कुश्ती करके दूध पिलाना मेरे बस का नहीं। मरे सूखकर !'

मुन्नी बच जाती, तेजी से दौड़कर घर के सामने आम के पेड़ के नीचे खड़ी होकर अपनी समवयसी संगिनी को बुलाती, 'ओ नेनू ऽ ऽ !'

उसके बाबा ने एक दिन घर में कहा, 'सुनो, मुन्नी को पन्द्रह दिनों से ठीक से देखा नहीं। आज आते वक्त देखा, वह सड़क पर खेल रही थी, ऐसी दुर्बल हो गई है कि पहचानी भी नहीं जाती। पीठ सिकुड़ गई है, गले की हड्डी निकल आई है। बीमार तो है नहीं, फिर ऐसी दुर्बल क्यों हो रही है, जरा बताओ तो....।'

मुन्नी की माँ ने कहा, 'दुर्बल नहीं होगी तो और क्या होगी ? जरा भी दूध नहीं पीतीं। मरती है तो मरे, मुझसे रोज-रोज लड़ा नहीं जाता। कौन जाएगा इस शरीर लड़की को दूध पिलने। जो उसकी किस्मत में है, वही होने दो...।'

वही हो रहा था। शरीर लड़की सूखती जा रही थी।

भाद्र का महीना। अचानक वर्षा थम गयी और तेज धूप चढ़ आयी। गाँव के तालाब में सारे खेतों की पाट की गांठें भीगने को रखी थीं। नदी के पार कपास के फूल खिल गए थे। गाँव के हीरू चक्रवर्ती की आढ़त मेंइस समय काम-काज की खूब भीड़ थी। जगह-जगह से धान व पाट की ढेरो नौकाएँ गंगा के धाट पर आ लगी थी। हरीश युगी आढ़त का मुँशी था तराजू पर एक मन धान तौलते-तौलते उसमें दसेक सेर और मिला देना उसके लिए बच्चों का खेल था। हांगर के मुखखुदाई की बड़ी-सी महाजनी नौका से धान के बस्ते उतर रहे थे। पेड़ के साए में धान के ऊँचे स्तूप से हरीश सुर-संयोग से तराजू में धान तौल रहा था—'राम—राम—राम हे राम—राम हे दो—दो दो—दो हे तीत—तीन तीन...'

गफूर माझी नारियल के हुक्के से तंबाकू से खींचते-खीचते कह रहा था, 'जरा जल्दी-जल्दी हाथ चलाइए, मुँशी महाशय। हमारी नौका भी खाली हो तो छुट्टी मिले....।'

हरि मुखुयो महाशय को जरा हड़बड़ा कर आते देखा तो हीरू चक्रवर्ती बोले, 'आओ-आओ, हरि ! इधर कैसे आए ?....आओ, हुक्का पिया....'

'नहीं, रहने दो हुक्का। वो, मेरी बेटी को इधर आते देखा है क्या, हीरू ? नहीं ?....बड़ी! मुश्किल में डाल दिया है इस बंदरी लड़की ने...? बारह बज रहे हैं, सुबह नौ बजे से घर से निकली है...चलू भैया, जरा खोजूं उसे। इतना परेशन कर रखा है इस लड़की ने कि तुमसे क्या बताऊँ...।'

बहूत खोज-बीन के बाद राय-बाड़ी के रास्ते पर उमा मिट्टी में पाँव फैलाए बैठी नजर आयी। वह हाथ में न जाने क्या पकड़े मन ही मन बुदबुद रही थी।

'ओ बदमाश लड़की...'

हरि मुखुयों ने आगे जाकर लड़की को गोद में उठा लिया। बाबा की गोद पाकर उमा खूब खुश हुई, हाथ-पाँव नचाकर बोलने लगी, 'बाबा, ओ बाबा...वो उनका नादू बहुत बदमाश है..वो...वो दूध भी नहीं पीता...मैं दूध पीती हूँ, है न बाबा।'

'हूँ दूध जरूर पीना चाहिए। यहाँ क्या कर रही थी ? हाथ में क्या है ?'

'लेमनचूस। वो पूँटी का मामा आया है, उसी ने दी।'

घर में पाँव रखते ही उमा को सजा मिलनी शुरू हो गयी। कटोरी भरा दूध,

साबूदाना और खींचतान आदि। उसका रोना-पीटना और अनुनय-विनय पाषाणी माँ बिलकुल नहीं सुनती, बस, जबरदस्ती मुँह में ठूँस-ठूँस कर दूध उँड़ेलती जाती। अन्त में वह पाँव चलाने लगी, जिससे दूध समेत कटोरी उलट कर नीचे जा गिरी।

धम ! धम ! दो जोरदार घूंसे पड़े पीठ पर। पीठ लगभग टेढ़ी हो आयी।

'हतभागिनी कमजर्फ कहीं की। रुपये में छः सेर दूध मिल रहा है, भात जुटता नहीं, दूध का खर्च सहते-सहते जान निकल गयी। मगर लड़की की दुष्टता तो देखो....आधा दूध धड़ाम से जमीन पर गिरा दिया।'

मुन्नी का दम संभला तो वह हाथ-पाँव पसारकर रोने लगी। बड़ी देर तक रोती रही।

शाम होने को आयी। उनके आँगन में पूर्वजों के जमाने के बोये आम के पेड़ की छाया दोपहर की धूप को रोके रखती। मुन्नी बैठी-बैठी सोच रही थी, दूसरों के घर में खाने को अच्छी चीजें मिलती हैं—मिठाई—जबकि उनके घर में सिर्फ दूध और दूध !

उसकी माँ बोली, 'कहानी सुनेगी, शरीर लड़की ?'

मुन्नी गर्दन हिलाकर माँ के पास सरक आयी।

'सुन मुन्नी ! एक था राजा...! अरे, जरा पास सरक कर बैठ न।'

कहानी सुनकर मुन्नी फिर मुहल्ले में विचरने बाहर निकली। बांसवन के तले पैदल-पैदल चली। लोभ में आकर वह दुबारा राय-बाड़ी गयी, दूसरे के घर में ही बढ़िया-बढ़िया खाने की चीजें जो मिलती है। बिस्कुट, लेमनचूस और भी बहुत कुछ।

नानू के आँगन में पहुँचते ही उसकी नजर पपीते के पेड़ की ओर उठ गयी। वह अवाक् रह गयी, संगिनी को बुलाकर उसने पेड़ की ओर इशारा किया और बोली, 'ए नानू, देख पपीता।'

उसकी माँ उसे पपीता खाने को देती है, खाने में अच्छा भी लगता है, मगर क्या ये पेड़ की डाल पर इसी तरह लटकते हैं! देर तक पपीते का पेड़ ताकती रही।

❑

पूजा के कुछ पहले मुन्नी का मामा कलकत्ता से आया। इतने प्रकार की खाने की चीजें उसने अपनी आँखों से कभी नहीं देखी थीं। किसमिश पड़ी मिठाई, बड़ी-बड़ी अमृती, जलेबी, गजक, संतरे व और भी न जाने क्या-क्या!

बगल के गाँव में मामा के एक दोस्त का घर था। मामा अगले दिन सुबह उठा और उसे सजा-सँवार कर साथ ले गया।

रास्ते पर एक साइकिल-सवार नजर आया तो वह उसे एकटक देखने लगी।

मामा से पूछा, 'यह कौन गया मामा ?'

'कोई राहगीर होगा…'

उमा बोली, 'सफेद चेहरा…सफेद कपड़ा…देखा न मामा ?… चमत्कार।…'

मामा हँसकर बोला, 'यह चमत्कार' तूने कैसे सीख लिया ?…अच्छा मुन्नी, तू उससे ब्याह करेगी ?'

उमा ने सप्रतिभ होकर गर्दन हिला दी—यानी उसे कोई आपत्ति नहीं।

भाद्र के आखिरी दिन थे, मलेरिया का समय। यों बीमारी ज्यादा नहीं फैली थी, घर-घर में कच्ची मूड़ी देना शुरू होने में अभी देर थी। उमा के पैदल चलने की गति धीरे-धीरे मंद पड़ती जा रही थी, बीच-बीच में वह राह किनारे बैठने लगी तो कभी-कभी आह-ऊह करने लगी। उसका मामा बोला, 'क्या हुआ, मुन्नी! धूप बहुत तेज है भई, ज्यादा दूर नहीं है, चल…'

दोस्त के घर पहुँचने से पहले ही उमा बोली, 'मामा, मुझे जाड़ा लग रहा है।'

'वाह, जाड़ा कैसे लगेगा ? भाद्र महीने की इस गर्मी में जाड़ा ! तुझे कुछ नहीं हुआ, चल।'

मुन्नी आगे कुछ न बोलकर चुपचाप चलती रही, मगर कुछ दूर जाकर उसे लगा, जाड़ा ज्यादा ही लग रहा है। सिर्फ जाड़ा ही नहीं, उसे प्यास भी लग रही थी। वह साहस बटोरकर बोली, 'मामा, मैं पानी पिऊँगी।'

'तू तो बहुत तंग कर रही है। अच्छा, थोड़ी दूर और चल। घर पहुँचते ही पानी पी लेना....'

गंतव्य स्थान पर पहुँचकर मामा उसकी बात भुल ही गया। बहुत दिनों के बाद पुराने दोस्त से मिला था, सो बातचीत व हँसी-मजाक में ऐसा मशगूल हुआ कि उमा के सुख-दुख की ओर ताकने की उसे फुरसत ही नहीं मिली। उमा ने एक-दो बार क्या कहा, बातचीत के चक्कर में उस ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया।

कुछ क्षणों के बाद मामा ने मुँह फेर कर देखा, वह सिकुड़ी-सिमटी धूप में बैठी है। मामा ने सवाल किया तो जवाब दिया, 'पानी पिऊँगी, मामा। बड़ी प्यास लगी है।'

'देखूँ ? अरे, अभी तो बदन तो बहुत गर्म है। उफ्, तेज बुखार चढ़ा है। लगता है, मलेरिया है। उठ, चल, तुझे उनके कमरे में सुला दूँ।'

मुन्नी को पानी पिलाकर मामा ने बिस्तर पर लिटा दिया और दुबारा मुहल्ले में निकल आया। नहाना-खाना दोस्त के घर ही कर लिया था। धीरे-धीरे दोपहर हो गयी। मुखुयो मुहल्ले के हारू के कमरे में गाँव के बेकार लड़कों का झुण्ड

एक-एक कर आ पहुँचा। विशाल केतली में चाय का पानी चढ़ा, बातों-बातों में एकदम से शाम हो आयी।

इतनी देर के बाद अचानक मुन्नी की याद हो आयी मामा को। वह बोला, 'ओ माँ, तुम लोग बैठों भाई । मुन्नी की तबियत ठीक नहीं, कमरे में अकेली लिटा आया हूँ। जरा देख आऊँ...'

दोस्त के घर पहुँचा तो आँगन में ही दोस्त का बड़ा लड़का टोना बोला, 'मुन्नी कहाँ है, चाचा ?'

मामा विस्मय से बोला, 'क्यों, वह तो तुम लोगों के बाहरी कमरे में लेटी थी।'

'नहीं चाचा, वह तो बड़ी देर हुई, आपके पास जाने को कहकर बाहर निकली थी। तब तेज धूप थी। उठते ही रोने लगी, मामा के पास जाऊँगी। कुछ सुनती ही नहीं थी। उस धूप में आपको खोजने निकल पड़ी।'

'क्या कहते हो ? उसे क्या मालूम कि मैं कहाँ हूँ। और फिर तुम लोगों ने उस बच्ची को जाने कैसे दिया ? तुम लोग भी खूब हो ! लड़की तो गयी हाथ से....'

मामा घबराहट में तेज-तेज कदमों से दुबारा मुहल्ले की ओर निकल गया। परिचित सारी जगहों में उसे खोज लिया, वह कहीं नहीं मिली। किस दिशा से कब कहाँ चली गई, यह किसी ने नहीं देखा था। सिर्फ मति मुखुयो का लड़का बोला, 'बहुत पहले एक अपरिचित छोटी लड़की को तेज धूप में डोलता-डोलता हारू के घर के पास से आते देखा था। लड़की को मैं पहचानता नहीं था, सोचा था, शायद हारू के घर में रिश्तेदार आए होंगे, उन्हीं की लड़की होगी।'

अन्त में वह मिली गाँव के बाहरी रास्ते पर। मामा को खोजने निकली तो रास्ता भूल गयी थी और अब निरूपाय स्थिति में रास्ते पर बैठी रो रही थी। बूढ़ा हारान सरकार उसे ही देखते अपने साथ ले आया। पूछने पर पता चला—उसने सारे दिन से कुछ खाया नहीं था। खाने के नाम पर दोपहर को घर में किसी बच्चे ने एक टुकड़ा अमरस दिया था, ज्वर की बेहोशी में उसे ही लेटे-लेटे चूसती रही थी। उसके मामा को सब भला-बुरा कहने लगे। सरकार महाशय ने कहा, 'तुम्हें भी भैया, अकल नहीं है। छोटी बच्ची को साथ लेकर एक कोस पैदल चले आए, रास्ते में बुखार हो गया। पर न सुना और न देखा। बस, उसे कमरे में लिटाकर तुम चल दिए अड्डा मारने। न जरा दूध दिया और न कुछ और ! यह भी कोई बात हुई।'

मामा अप्रतिभ होकर बोला, 'तो मैं कोई इसे जानबूझ कर थोड़े ही लाया

था। आने लगा तो किसी तरह छोड़ा ही नहीं इसने। बस, एक ही रट–तुम्हारे साथ चलूँगी, मामा...। भला मैं क्या करता।'

'खूब, बहुत मान दिया अपनी भाँजी को। अब चलो मेरे घर, उसे थोड़ा दूध पिला दूँ जरा-सी बच्ची ने सारे दिन कुछ नहीं खाया, उफ् !'

मुन्नी का मामा थोड़ा सहम गया था, घर लौटते समय वह मुन्नी से बोला, 'सुन, घर चलकर किसी से कुछ बताना, समझी। माँ से यह मत कहना कि तुम्हें बुखार हुआ था या गुम गयी थी, समझ गयी न ! मेरी प्यारी मुन्नी, मैं परसों कलकत्ता जाऊँगा तो तुम्हें भी साथ ले जाऊँगा।'

'मैं कलकत्ते चलूँगी, मामा।'

'अगर आज घर में कुछ बताया नहीं तो परसों जरूर ले जाऊँगा।...नहीं बताओगी ?'

मगर घर पहुच कर मुन्नी ने अकल की खराबी के कारण सब गड़बड़ कर दिया। उसके सूखे मुखड़े और चेहरे के हाव-भाव से माँ ने ताड़ लिया कि कुछ घटा जरूर है। पूछो, 'क्यों री मुन्नी क्या खाया वहाँ। खाने के विषय में मामा कुछ सिखाया-समझाया नहीं था। सो मुन्नी बोली, अमरस बहुत अच्छा लगा। एक टुकड़ा खाया था।

'अमरस ? और कुछ खाया नही वहाँ सारा दिन ? क्यों रे सतीश, मुन्नी ने वहाँ कुछ खाया नहीं ?'

'खाया क्यों नही था। फिर...क्या बताऊँ...तुम तो जानती हो इसे, खाती तो कुछ है नहीं।'

माँ जरा दूर हुई तो मुन्नी ने मुँह झुकाकर हँसते हुए मामा की ओर देखा और हाथ नचाकर बोली, 'देखा, माँ से कुछ बताया नहीं। कल मुझे कलकत्ता ले चलोगे न ?'

'ठेंगा ले जाऊँगा, न खाने की बात क्यों बतायी ? बंदरी कहीं की...।'

मामा क्यों नाराज हुआ, इसका कारण मुन्नी को समझ में नहीं अया।

खाने के सम्बन्ध में मामा ने तो कुछ कहा ही नहीं था, सो अगर उसने सच बोल दिया तो इसमें उसका दोष ही क्या था ?

मामा को भला इसकी समझ कहाँ ? वह नाराज होकर बोला, 'देखना, अब कभी तेरे लिए कुछ भी खरीदकर नहीं लाऊँगा। कलकत्ता भी नहीं ले जाऊँगा।'

अपने प्रति इस फैसले से मुन्नी को रोना आ गया। वाह, जिस बात को बताने से मना नहीं किया, उसे बोलने में कैसा अपराध ? वह भला मामा के मन की बात कैसे समझ जाती ?

मुन्नी एक ही अभिमानी थी, वह चीख कर हाथ-पाँव चलाने और रोने नहीं लगी, बल्कि एक कोने में चुपचाप होंठ फुला कर खड़ी निशब्द रोने लगी।

अगले दिन सबेरे मामा कलकत्ता रवाना हो गया—जाते समय उसके साथ बात भी नहीं की।

❑

दिन दोबारा कटने लगे। बारिशें खत्म हो गयीं। सर्दियां आ गयीं। क्रमशः सर्दियां भी बीत गयीं। पूजा इस बार देर से आयी—कार्तिक महीने के शुरू में किन्तु घर-घर में सब बीमार पड़ गए—पूजा में अब की बार मजा नहीं आया। अनुभवी लोग भी कहने लगे, 'ऐसा दुर्गोत्सव उन्होंने कभी देखा नहीं।'

उमा सारा आश्विन भोगने के बाद ठीक हुई थी। एक तो न खाने की वजह से पहले ही दुबली हो गई थी। ऊपर से बुखार झेल कर और दुबली हो गई थी। उसके शरीर में विशेष कुछ रहा नहीं। फिर भी जैसे ही ज्वर छुटा, रजाई फेंक कर उठ खड़ी हुई। किसी की एक न सुनी। इसके बाद खाल पाडा, सदगोप पाडा और जहाँ-तहाँ इमली की खोज में निकल गई।

घर आती तो पीठ पर धम-धम मुक्के पड़ते। माँ कहती, 'दुष्ट लड़की, मरती भी नहीं कि आफत से जान छूटे।'

उधर से बड़ी बुआ बोल पड़ती, 'यह सवेरे-सवेरे क्या लगा रखा है, छोटी बहू। लड़की के मरने में देर ही कहाँ रही—जरा उसके शरीर तो देखो। बीमारी और दुबली लड़की को भला ऐसे कोई मारता है। छिः-छिः, पेट से एक पैदा करके ही इस कदर बेजार, अगर एक-दो और होते तो...। आ उमा, मेरे पास आ जा, सोने की गुड़िया। आ जा, बेटे...।'

माँ पलट कर जवाब देती, 'जो किया, ठीक किया। मैं अपनी बेटी का बोलती हूँ, दूसरे क्यों जलें। उधर मत जाना, उधर जाने की बिल्कुल जरूरत नहीं। बड़ी-बड़ी बातें सभी बोलते हैं—जब बुखार में पड़ी थी, तब तो कोई देखभाल करने आगे नहीं आया। तब तो रात को भी मुझे ही जागना पड़ता था और डाक्टर को बुलाने भी मुझे ही जाना पड़ता था, दवा भी मुझे पिलानी पड़ती थी। मुँह से तो सभी प्यार जताते नहीं अघाते...।

ऐसी हालत में दोनों में झगड़ा होने की पूरी गुँजाइश होती मगर बुआ हरिमोहिनी बड़ी अच्छी थीं। वह झूठ-मूठ का प्यार नहीं करती थीं, मुन्नी के ऊपर उसका विशेष स्नेह था, वह बिना कुछ बोले अपने कमरे में घुस जातीं।

पूजा के अवसर पर मुन्नी का मामा फिर आया। उसकी उम्र यही बीस-इक्कीस से ज्यादा नहीं थी, इस दीदी के अलावा संसार में उसका और कोई नहीं था। इतने

दिनों से वह कलकत्ता में नौकरी पाने की कोशिश में लगा था। पूजा के कुछ दिन पहले ही एक छापेखाने में अठारह रुपये महीने की नौकरी पायी थी।

खाने की कई चीजें, मुन्नी के लिए बढ़िया-बढ़िया दो-तीन रंगीन कपड़े, छोटी साड़ी और जापानी जूते लाया था। उसकी दीदी ने डाँटा, 'क्यों बाबू साहब, यह सब लाने की क्या जरूरत थी, अभी-अभी तो नौकरी लगी है, इतना क्यों खर्च किया, दो पैसे जमा करने की कोशिश करो, अच्छा खाओ-पहनों। शरीर तो देखती हूँ, बहुत खराब हो गया है—तबियत तो ठीक थी न।'

लड़के ने हँसकर जवाब दिया, 'नहीं दीदी, तबियत तो बिल्कुल ठीक है। हाँ, मेहनत बड़ी करनी पड़ती है। सुबह नौ से लेकर शाम छः बजे तक ड्यूटी बजानी पड़ती है। कभी-कभी तो रात के आठ भी बज जाते है। कई बार तो रविवार को भी काम करना पड़ता है। पर इसमें बारह आने की दर से ओवर टाइम मिलता है। अबकी बार गुड़ आएगा तो एक कलसी गुड़ ले जाऊँगा वहाँ से, भीगे चने और गुड़ सवेरे उठकर खाओ तो फायदा होता है।'

फिर वह चीनी-मिट्टी का खिलौना निकालकर मुन्नी को पुकारता है, 'ओ उमा, देखो, काँच का कितना बढ़िया जोड़ा-सिपाही लाया हूँ। इधर आ...'

मुन्नी नाचती-कूदती भागकर आई। मामा के आने से मुन्नी बहुत खुश हुई थी। मामा के आए बगैर तो इस तरह की खाने की चीजें मिलती नहीं...। पूजा के कुछ दिन मुन्नी सर्वदा मामा के पास ही रही। सुबह होते न होते मुन्नी आँखें मलकर मामा के पास आकर बैठती, बीच-बीच में कहती, 'इस बार कलकत्ता नहीं ले जाओगे, मामा ?'

पूजा की छुट्टियाँ खत्म होते ही मामा ने दीदी के आगे प्रस्ताव रखा, दीदी सहोदर बहन नहीं, विमाता से थी, फिर भी उसे बहुत प्यार करती थी, मानती थी। वह छुट्टी मिलते ही भागकर यहाँ आता था। पति-पत्नी ने एक-दूसरे से परामर्श करके दसेक दिनों के लिए आखिरकार मुन्नी को कलकत्ता घुमा लाने की सहमति दे दी।

मुन्नी का मामा खुश होकर बोला, 'मैं उसे लिखना-पढ़ना सिखाऊँगा, वहाँ जाकर महाकाली पाठशाला में भर्ती कराऊँगा। रोज देखता हूँ, गाड़ी आती है, घरों से छोटे-छोटे बच्चों को ढोकर ले जाती है। गाड़ी पर लिखा होता है—महाकाली पाठशाला।'

बहनोई हरि मुखुयो ने कहा, 'पागल हो क्या ! इत्ती सी बच्ची भला स्कूल में भर्त्ती होती है। फिर वह वहाँ टिकेगी कितने दिन ? ले जाओ दो दिन को, यहाँ तो मलेरिया ने तंग कर रखा है—शायद वहाँ दिन-हवा बदलने से भली-चंगी हो जाए....।'

❑

ट्रेन से कलकत्ता आते वक्त उमा खुब खुश थीं शुरू में उसे डर लगा था, रेलगाड़ी की खिड़की के पास मामा ने बिठा दिया था। गाड़ी के चलते ही मुन्नी को लगा था, उसके पाँव तले की जमीन छूटती चली जा रही है। डर से उसकी आँखें फैल गई थीं। आतंक के मारे वह मामा को जकड़ने ही जा रही थी कि मामा ने हँस कर कहा था, 'डर क्यों रही हो' मुन्नी ? डर कैसा ? यह रेलगाड़ी है। देखना, यह और भी तेजी से भागेगी।'

रेलगाड़ी चढ़ने के आनन्द को जिस उम्र में बुद्धि से उपभोग किया जाता है, उमा की उम्र हुई नहीं थी। वह सिर्फ चुपचाप खिड़की के बाहर ताकती हुई बैठी रही। बीच-बीच में उसका मामा उत्साह से कहता, 'क्यों री मुन्नी, यह सब कैसा लग रहा है ? रेलगाड़ी कैसी लग रही है '

मुन्नी कहती, 'बहुत बढ़िया....।'

मगर थोड़ी देर के बाद ही मामा ने अफसोस के साथ देखा मुन्नी बैठी-बैठी ऊँघ रही है और देखते-ही-देखते सो गई है।

गाड़ी कलकत्ता आ पहुँची तो एक रिक्शे पर बिठाकर मामा उसे डेरे पर ले आया। अखिल मिस्त्री लेन में एक छोटी-सी मेस थी—आफिस के बाबुओं की मेस। वहीं डेरा था। वहाँ सभी बड़ी उम्र के थे, सिर्फ वही छोटी उम्र का था। मुन्नी के अकस्मात अविर्भाव से सभी बेहद आनंदित हुए। घर में सभी के बाल-बच्चे थे, मगर चालीस-पचास रुपये महीने की नौकरी में महीने में एक या दो बार से ज्यादा घर जाना हो नहीं पाता था और बाल-बच्चों का मुँह देखने को तरस कर रह जाते थे। मुन्नी को अपने बीच पाकर उनका अभाव दूर हो गया। चार-पाँच साल की फूल-सी कोमल बच्ची, चाँद-सा मुखड़ा, घुंघराले काले बाल, काली-काली बड़ी आँखें—आफिस की छुट्टी के बाद उसे लेकर खूब हुड़दंग मच जाती। कोई उसे अपने कमरे में बुलाता तो कोई उसे अपने कमरे में।

मगर उसके मामा को बड़ा दुख था। मुन्नी की वेशभूषा बिलकुल गँवारो जैसी थी। सिर में चोटी, माथे पर बिंदी, जरा-सी लड़की के पाँवों में रंग, शरीर पर साड़ी—यह गाँव की पुरानी सजधज भला आजकल शहरों में चलती है ? यहाँ के भद्र घरों के लड़के-लड़कियों के कितने प्यारे केश-विन्यास होते हैं, साफ-सुथरे कपड़े, टिपटाप सजावट, देखो तो लगे—काँच की गुड़िया। क्या मुन्नी को इस रूप में सजाया नहीं जा सकता !

यह सोच कर वह मुन्नी को ट्राम में बिठाकर धर्मतल्ला आया और एक नाई की दुकान में घुस गया। नाई से बोला, अगर साहबों के बच्चों के बाल काट सकते

हो तो कैंची उठाओ, वरना ऐसे घने काले बाल खराब करने की जरूरत नहीं।'

मेस से आते समय उसने मुन्नी के सिर की चोटियाँ खोल दी थीं।

बाल कटाना उमा को बड़ा अच्छा लगा। सामने एक विशाल आइना था, चार-पाँच बड़े-बड़े बल्ब जल रहे थे। नाई बीच-बीच मैदे की तरह न जाने क्या सफेद-सफेद उसके सिर पर लगा रहा था...। उफ़, कैसी तो गुदगुदी हो रही थी।

उसे सजाने में मुन्नी के मामा ने पाँच-छह रुपए खर्च कर डाले। मेस के नीयोगी महाशय एक-एक कर कई बेटे-बेटियों को पाँच-छह साल तक की उम्र में गँवा बैठे थे। उमा का पाकर उसे छोड़ना ही नहीं चाहते थे। संध्या के बाद रंगीन पोशाक पहनकर बाब कट बाल कटाए, चेहरे पर पाउडर पोते और पाँव में जरी के जूते डाले जब एक अन्य उमा उनके कमरे में आ खड़ी हुई तो उसे देखकर नियोगी महाशय आश्चर्यचकित रह गए।

मामा हँसकर बोला, 'कुछ खर्च हो गया तो क्या हुआ ? देखिए तो, इतनी सुन्दर लड़की कैसी भूत बनी घूमती थी।...ओ कुण्डु महाशय, आप भी देखिए, अच्छी लगती हैं न।'

मुन्नी की शीणता कैसे दूर की जाए, इस सम्बन्ध में नाना प्रकार का परामर्श चला। गली के मोड़ के एक डाक्टर ने काडलिवर आयल व कैप्लार के मंटू एक्सट्रैक्टर का सुझाव दिया, इसके अलावा बोले, 'खूब खिलाओ, बगैर खाए लड़की का यह हाल हुआ है। पौष्टिकता का अभाव है—इस उम्र में इसे खूब पुष्टिवर्धक चीजें खिलानी चाहिए न। सवेरे को एक का टानिक पंद्रह दिन तक खिलाइए, देखना, कैसी हो जाती है।'

लेकिन चौथे दिन ही मुन्नी को कँपकँपा कर ज्वर हुआ। मुन्नी का मामा काम पर न जा सका, सारा दिन मुन्नी के पास बैठा रहा। अन्य दिनों वृद्ध नियोगी महाशय की देख-रेख में मुन्नी को छोड़कर चला जाता था, मगर आज ऐसा न कर सका।....सध्या के पहले ही ज्वर उतर गया, मुन्नी उठकर बैठ गई और एक-एक टुकड़ा मिसरी चूसने लगी। दफ्तर से लौटते फणि बाबू मुन्नी के लिए एक अनार व कुछ संतरे लेते आए थे, सतीश बाबू भी अंगूर और कुछ संतरे लेकर आए थे। इसके अलावा दो-तीन और लोग भी कुछ न कुछ खरीद कर लाए थे।...सभी के चले जाने पर मुन्नी ने मामा की ओर नजरें उठाकर देखा, फिर होंठ लटका कर चेहरा झुका दिया।

मामा ने विस्मित होकर कहा, 'अरे, क्या हुआ मुन्नी ?'

मुन्नी दबे स्वर में रोकर बोली, 'घर जाऊँगी मामा, माँ के पास...।'

'अच्छा, रो मत, मुन्नी बुखार ठीक हो जाए, झटपट ले जाऊँगा।'

दो-तीन दिन बीत गए। बुखार उतर जरूर गया था, पर रात को बीच-बीच में वह नींद की खुमारी में माँ के लिए रोने लगती।...भुलावा देने के वास्ते उसे एक दिन हॉग साहब के बाजार में खिलौने की दुकान पर ले जाया गया। वहाँ उसे मोम का बड़ा गुड्डा खूब पसन्द आया, मगर उसका दाम बहुत ज्यादा था—साढ़े चार रूपए। यह रकम मामा के वेतन का एक-तिहाई हिस्सा था। मामा बोला, 'कोई और गुड्डा पसन्द करो, मुन्नी। यह अच्छा नहीं। ये सब कितने छोट-छोटे खिलौने हैं। हाथी लो, हाथी कैसा रहेगा ?'

मुन्नी कुछ बोली नहीं, चुपचाप गर्दन हिला दी, मगर खिलौना लौटाने का समय आया तो वह पहले की तरह गुड्डे को सीने से चिपकाए रही। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें नम हो आयीं।

दुकानदार बोला, 'बाबूजी, मुन्नी के दिल को दुख पहुँचा है, आप बड़ा गुड्डा ही लीजिए, कुछ कमीशन काट देता हूँ।'

मामा बोला, 'ठीक है, मुन्नी, तू बड़ा गुड्डा ही ले ले। कुत्ता लेने की जरूरत नहीं।...अच्छी तरह पकड़े रख, कहीं तोड़ मत देना।'

प्रायः एक सप्ताह बीत गया था। उस दिन रविवार था। मामा जरूरी वजह से चेतला हाट एक दोस्त से मिलने गया था। जल्दी ही आने को कहा था, किन्तु रूपए वसूलने थे, इसी की कोशिश में गया था। तब तक अन्य दिनों की तरह यह तय हुआ था कि नियोगी महाशय की देख-रेख में ही मुन्नी रहेगी।....थोड़ी देर तक मुन्नी के साथ इधर-उधर की बातें की, फिर वृद्धा नियोगी महाशय के दोपहर को सोन का वक्त हो आया। मुन्नी ने देखा, बातें करते-करते नियोगी महाशय अब कुछ बोल नहीं रहे, जरा देर में ही उनकी नासिका बजने लगी। मेस में किसी कमरे में कोई नहीं था, उमा का डर-सा लग रहा था एक बार उसने खिड़की से उचक कर देखा, गली के मोड़ पर दो काबुली वाले खड़े-खड़े बातें कर रहे थे। उनके लबादे व लम्बे चेहरों से डर कर वह खिड़की से परे सरक गई।

मामा कहाँ गया ? मामा आया क्यों नहीं ?

वह डर से पुकारने लगी, जेठा बाबू, 'ओ जेठा बाबू।'

मामा ने उसे सिखा दिया था कि नियोगी महाशय को जेठा बाबू (ताऊ) कहकर बुलाए।

नियोगी महाशय ने नींद की खुमारी में ऊँघ कर कहा, 'हूँ, अच्छा-अच्छा..।'

वे स्वप्न देख रहे थे—गाँव के घर में रात को सोये हुए है, मुहल्ले का चौकीदार कंधे पर लाठी रखे बाहर खड़ा उनके नाम की हांक लगा रहा है।

मुन्नी ने इधर-उधर देखा, फिर उठ खड़ी हुई। सीढ़ी का दरवाजा खुला हुआ

था, वह उतर कर नीचे आई। नौकर-चाकर रसोई घर को ताला लगा कर बहुत पहले के जा चुके थे। एक काली बिल्ली नाली के पास बैठी मछली के काँटे चबा रही थी।

बाहर निकलते ही सड़क थी। मुन्नी की धारण थी कि यह रास्ता पार करने ही मामा के पास पहुँच जाएगी। यह रास्ता जहाँ खत्म होगा, वहीं परिचित माहौल होगा।

वह सड़क पर निकल पड़ी और चलते-चलते राह भूल गई। गली पार करते ही एक बड़ी गली मिली, उसे पार किया तो लोहे के बेड़े लगे एक मैदान जैसी जगह जा पहुँची, उसे पार किया तो फिर एक गली। बस, फिर, धीरे-धीरे मुन्नी के दिमाग में सब गड़बड़ा गया। इस बीच उसने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं ताका था। एक बार जो पीछे की तरफ देखा तो उसे लगा, यह रास्ता तो वह पहचानती तक नहीं।...सामने व पीछे के दोनों जगह उसके लिए पूरी तरह अपरिचित ये कहीं भी कोई ऐसी चीज नजर नहीं आई, जिसे पहले देखा हो।

वह डर के मारे रोने लगी। ऐन दोपहर का वक्त था, रास्ते में कोई नहीं था, विशेषकर वे गलियाँ तो बिलकुल निर्जन थीं। थोड़ी दूर जाकर वह एक लाल रंग के मकान के सामने खड़ी हो कर रोने लगी। मकान से एक नौकरानी-जैसी औरत बाहर निकल कर आई और पूछा, क्या बात है, मुन्नी ? क्या हुआ, रोती क्यों हो? ...तुम्हारा घर कौन-सा है ? वो ?'

मुन्नी रोते-रोते बोली, 'मैं मामा के पास जाऊँगी...'

'तुम्हारा घर कहाँ है, बताओ ?'

मुन्नी ने एक तरफ उँगली से इशारा करते हुए कहा, 'उस तरफ?'

'तुम्हारा पिताजी का नाम क्या है ?'

पिताजी का नाम ? कहाँ, यह तो वह जानती नहीं ! पिताजी का नाम 'बाबा'—और क्या ? वह नजरें उठा कर नौकरानी का चेहरा ताकने लगी।

औरत ने एक बार गली के दोनों छोरों की ओर देखा, फिर बोली, 'अच्छा, मेरे साथ आ, मुन्नी। चल, मैं तुझे मामा के पास ले जाऊँ। आ....'

यह गली, वह गली चलते-चलते अन्त में एक खोलीनुमा घर आया। नौकरानी ने किसी को बुलाया और धीमे स्वर में उससे कुछ कहा। फिर दानों जने आपस में न जाने क्या बतियाने लगीं। नवागत औरत ने हाथों से न जाने क्या दिखाया। क्या—यह मुन्नी की समझ में नहीं आया। वे मुन्नी को एक अंधेरे कमरे मे ले गए। मुनी का डर के मारे बुरा हाल हो गया। उसने सुन रखा था, डायनें

छोटे-छोटे बच्चों का पकड़ कर ऐसा ही अंधेरे कमरों में बन्द कर देती हैं। वह रूआँसे स्वर में बोली, 'मेरा मामा कहाँ है ?'

नवागत औरत बोली, 'किसी ने देखा तो नहीं लाते समय ? मेरे बापू को बड़ा डर लगता है। वो उस सौरभी के घर पुलिस ने आकर कैसा हँगामा किया था।'

नौकरानी-जैसी औरत ने विद्रू पता से कहा, 'छोड़ो भी। जाओ, सामने वाला दरवाजा खोल कर चाक क्यों आयी ? जैसे कुछ जानती नहीं हो।'

उसने मुन्नी को चौकी पर बिठा दिया और सिर पर हाथ फेर कर प्यार-दुलार से बातें करने लगी। उसे एक रसगुल्ला खाने को दिया। फिर मुन्नी के हाथ के सोने के कंगन को दो-एक बार हिला-डुला कर बोली, 'अब इसे खोल कर रखेगी, मुन्नी ? शाबास, मेरी लक्ष्मी लड़की। खोल दे...'

मुन्नी डरते-डरते बोली, 'कंगन मत खोलो...मेरे मामा को बुला दो...।'

तब तक उसके हाथ से कंगन काफी हद तक निकल चुका था, यह देखकर मुन्नी रो पड़ी, बोली, 'मेरा कंगन मत लो....मामा से बता दूँगी...मेरा कंगन मत निकालो....'

नौकरानी-जैसी औरत के इशारा करने पर नवागता औरत ने मुन्नी का मुँह दबा दिया। मगर एक बात की दोनों से चूक हो गई थी। उमा के दुबले-पतले हाथ-पाँव देखकर उसके प्रतिरोध करने की क्षमता के बारे में भले ही साधारण लोगों का सन्देह हो, कि तु यह धारणा कितनी झूठी है, यह पिछले माह दूध पीने के खिलाफ असहयोग आंदोलन के समय उमा की माँ अच्छी तरह जान चुकी थी। ये दोनों भला यह सूचना कहाँ से पातीं ? बेचारियों को अपनी भूल का अहसास जल्दी ही हो गया। धक्कामुक्की में बिस्तरा उलटा-पुलटा हो गया। उमा ने ऐसे दाँत काटे कि नाकरानी-जैसी औरत का बुरा हाल। इसे गोलमाल में एक कंगन हाथ से निकलकर चौकी के नीचे न जाने कहाँ लुढ़क गया। बाद मे उसके हाथ-मुँह मजबूती से जकड़ कर नवागता औरत ने दूसरा कंगन जबरदस्ती खोल लिया।

नौकरानी-जैसी औरत बोली, 'छोड़ दे, छोड़ दे, रो-रोकर मर जाएगी, अभी जाकर इस आफत को सड़क पर छोड़ आती हूँ। बाप रे, एक ही दुष्ट लड़की है...'

❑

भारी खोजबीन और भागदौड़ के बाद संध्या के समय उमा नेबूतला के सेन्ट जेम्स पार्क के कोने में मिल गई। नाई के यहाँ कटाए बाब कट बाल बिखर गए थे, माथे और गालों पर दाग, हाथ खाली, फ्राक की बेल्ट फट गई थी।....'मामा'

'मामा' पुकारती हुई रो रही थी, कई लोग उसके चारों ओर खड़े उससे पूछ-माछ कर रहे थे, एक आदमी पहरे वाले को भी बुला लाया था, कि ठीक उसी समय नियोगी महाशय, कुण्डु महाशय, सतीश बाबू, अखिल बाबू, मुन्नी का मामा वगैरह सभी आ पहुँचे।

नियमानुसार थाने में रिपोर्ट लिखाई गई। उसके कंगन कौन खोलकर ले गया था, इस बारे में मुन्नी कोई जानकारी नहीं दे सकीं मुन्नी के मामा को सभी ने भला-बुरा कहा। जब देखभाल करने का समय नहीं तो पराए की लड़की क्यों लाए, आदि। सब बोले, 'जाओ, उसे कल ही घर पहुँचा आओ। छीः भला ऐसा भी कोई करता है।'

मेस के सब लोगों ने चंदा इकट्ठा कर मुन्नी के लिए दो पालिश किए विलायती सोने के कंगन खरीद दिए। घर चलते समय उसके मामा ने कहा, 'मुन्नी, सुन, घर चलकर यह सब बातें किसी से मत बताना। समझ गई न ? किसी से कुछ मत कहना। याद रखना, समझा, मेरी लक्ष्मी बिटिया। वरना फिर कभी कलकत्ता लेकर नहीं आऊँगा।'

मुन्नी ने सिर हिलाकर मान लिया। बोली, 'ठीक है। हाँ मामा, तब मुझे एक गुड्डा खरीद देना, और एक मेम गुड़िया भी...।'

●

ठेलागाड़ी

अभी-अभी बिस्तरे से उठा था। धूप तब भी अच्छी तरह निकली नहीं थी। पेड़ों पर कुछ पक्षी शोर-गुल कर रहे थे।

मैं मन ही मन नाम-तोल कर रहा था कि कल रात के बासी केले के बड़े जो मेरे लिए रसोईघर में रखे थे, उसे किस बहाने से माँ से माँगे जाए, या बिना मुँह धोए माँगना उचित है या नहीं। ऐसे समय हमारे बाहरी दरवाजे के पास एक ठेलागाड़ी धड़धड़ाती हुई आयी और इसी के साथ एक तेज स्वर भी उभरा–

'टुनी ऽ ऽ ऽ दादा ऽ ऽ ऽ–ओ टूनी ।'

तभी मेरी जेठी-माँ झुंझला कर न जाने क्या हाथ में लेकर भागी–सुबह सुबह क्या हो रहा है ? अभी कौओं की नींद टूटी नहीं, ऐसे समय छोटे बच्चे को बाहर ले जाने के लिए आ गया। सुबह नहीं, संध्या नहीं, दोपहर नहीं, हर समय खड़खड़ की आवाज, जाऊँ, एक बार गांगुली के घर देख आऊँ। जाकर बोलूँ, न दिन देखते हो न रात, बच्चे को हर समय गाड़ी चलाने देते हो, उसका परकाल तो बिगड़ जाएगा। जाओ, इसी वक्त चले जाओ। टूनी इस वक्त नहीं आएगा। गाड़ी की खड़खड़ हमेशा नहीं सही जाती भैया, यह सब ले जाओ।

मेरे निरीह चेहरे के साथ जेठी-माँ के पीछे खड़े होते न होने गाड़ी का स्वर हमारे घर के सामने से दूर से दूर होता हुआ अस्पष्ट हो गया। इसके बाद हाथ-मुँह धोकर, खिड़की के पास पहुँचा तो आवाज आई, 'ओ टूनिया !' मैंने तत्काल पीछे मुड़कर देखा, जेठी-माँ का दूर-दूर तक पता नहीं था। बस, मैं दरवाजे से बाहर निकल गया। सुबह के पद्म की तरह निर्मल, प्रफुल्ल, तरूण, नरू मुस्कराता हुआ सामने खड़ा था।

'आओ न, टूनिया।'

'अभी तो उठा हूँ। अभी तक मुँह भी नहीं धोया, कुछ खाया भी नहीं। अन्दर आओ न ।'

नरू ने आँखों से इशारा करके पूछा, 'कहाँ ?'

'जेठी-माँ कुछ नहीं बोलेंगी, तू आ जा...'

इस प्रस्ताव को वह विलकुल स्वीकार नहीं कर पाया।

'तू आ न मुँह धोकर, टुनिया। मैं चक्के वाली गाड़ी लाया हूँ। चढ़ेगा न, टूनिया।'

दोनों जने मिलकर मुहल्ले से बाहर निकल आए। इमली के पेड़ के नीचे खेलने की जगह पर खूब भीड़ थी। मुखुयो मुहल्ले के सारे लड़के आ जुटे थे। नरू मुस्कराकर बोला, 'आओ, पटू, निताई। मैं गाड़ी लाया हूँ। देखो, ठीक वक्त पर आ गया न। आओ, चढ़ो।'

गाड़ी को अकेला नरू ही खीचने लगा। चढ़े सब ही। पटू बोला, 'दोपहर को हमारे घर आओगे, नरू ?'

नरू ने सिर हिला कर असहमति प्रकट की।

पटू बोला, 'नहीं, जरूर आना। उस दिन तो तू एकदम से चाचा के सामने पड़ गया था, तभी तो...'

नरू बोला, 'मैं अब कभी तुम्हारे घर नहीं जाऊँगा, पटू। उस दिन तेरा चाचा मारने पर उतारू था। बोला था—राज-रोज गाड़ी चलाने का मजा चखाता हूँ, मैं उस दिन भाग नहीं आता तो जरूर मार खाता। अब अगर उसने मेरी गाड़ी छीन कर रख ली तो...।'

वहाँ से हम दोनों राह-किनारे बड़े आम के पेड़ के नीचे आकर बैठ गए और बातें करने लगे। रोज ही कितनी बातें करते। यही सब कि भविष्य में कौन क्या होगा ?

उसकी इतनी उम्र नहीं हुई थी कि भविष्य के बारे में सोच सके। वह भविष्य में क्या बनेगा, इस बारे में अच्छी तरह से नहीं बोल पाता, बौड़म की तरह जवाब देता। कहता है, वह नौकाओं के माझियों का सरदार बनेगा। रेलगाड़ी का इंजन चलाएगा। जो स्टीमर चलाते हैं—उन्हें क्या कहते हैं—वह भी बनना चाहता है। मैं अपने सम-वयसी लड़के की तुलना में जरा ही परिपक्व था। मैं कहता, 'मैं तो भाई, साहब डाक्टर बनूँगा। महकमे का हाकिम बनूँगा।'

बड़ी देर तक वह धूप में भटकने के बाद लाल-भभूका चेहरा लिए अपने घर लौटता। जिस तरफ बाबा बैठता, उस तरफ न जाकर वह चुपके-चुपके दूसरी जगह से घर में घुसता। माँ कहती, 'अरे बदमाश, तू कित्ती सुबह निकला अब दोपहर को घर में घुस रहा है। अब तुम....'

लड़का कहता, 'चुप-चुप, माँ । मैं तो उनके घर आम के पेड़-तले चुपचाप बैठा-बैठा खेल रहा था—मैं और टूनी। और तो कहीं गया नहीं था। सच...'

न जाने क्यों, मैं उसे बहुत प्यार करता था। गाँव के सभी लड़कों से इसके

चेहरे और बात करने के अंदाज में ऐसी कशिश थी—कि सारे दिन में कम-से-कम जब तक एक बार भी उससे मिल न लेता, मुझे चैन नहीं पड़ता। वह भी मेरे घर के अलावा और कहीं नहीं जाता।

कभी-कभी हमारे घर के सामने के जामुन के पेड़ के बगल से वह गाड़ी लेकर दोपहर से पहले अपने घर लौटता। मेरी ओर देखकर कहता, 'निताई इतना बदमाश है कि क्या कहूँ। मैंने इतना कहा कि गाड़ी पर चढ़, मैं तुझे ग्वाल पाड़ा छोड़ आता हूँ। मगर वह किसी तरह नहीं चढ़ा। कहने लगा, 'माँ नाराज होती हैं, जा रहा हूँ। आ, टूनी, चढ़ेगा?'

'लगता है, आज तेरी गाड़ी पर कोई चढ़ा नहीं।'

'हमारे मुहल्ले का कोई नहीं चढ़ा, कब से भटक रहा हूँ। सब एक ही बदमाश हैं। तू चढ़ेगा, टूनी?'

मैं उसकी आँखों की विनती भरी नजर को अनदेखा नहीं कर सका। मैं ठेले पर चढ़ा। वह चैत्र-वैशाख के दोपहर के सूरज की परवाह किए बिना बेहद खुशी से गाड़ी ठेलता चल पड़ा। सूर्य भी बदला लेने पर तुला हुआ था, सो लड़के का कोमल चेहरा लाल हो गया, पसीने से कपड़े भीग गए।

उसकी उम्र कब थी और शरीर था बेहद कमजोर और नाजुक। इसलिए वह मुहल्ले के किसी लड़के से पार नहीं पाता था। सभी का अन्याय उसे बर्दाश्त करना पड़ता था। दुर्वल के प्रति सबल तो अत्याचार ही करते हैं, यही उसके साथ भी होता था।

उस दिन बेहद गर्मी थी। चैत्र-वैशाख के दिन गाँव के रास्ते की धूल आग की तरह जल रही थी—पंचानन-तला में नाटक (जात्रा) की तैयारी चल रही थी। बाँस का मंच बाँधा जा रहा था। सभी सुबह से शाम तक काम कर रहे थे।

बड़े पेड़ के नीचे उसकी ठेलागाड़ी का खड़खड़ स्वर गूँज उठा। अनू बोला, 'वो देखो, नरू आ रहा है।'

थोड़ी देर में ही नरू ठेलागाड़ी लेकर हाजिर।

मंच के पास आकर पूछा, 'जात्रा कब होगी, टूनी?'

सूचना मिली तो परम संतोष से मुस्कराया। उंगली से गाड़ी की तरफ इशारा करके बोला, 'चढ़ेगा, पटू?'

पटू ने गर्दन हिलाकर कहा, 'चढूँगा, खींचेगा कौन?'

नरू खुश होकर बोला, 'क्यों, मैं खींचूँगा।'

आने वाले मनोरंजन के क्षणों की प्रत्याशा से उसकी आँखें व चेहरा दमक उठा।

पटू बोला, अरे जा, तू भला मुझे क्या खींच पाएगा। मुझे नहीं बैठना...'

'बैठ तो। जरूर खींच पाऊँगा।'

पटू बैठ गया।

पटू बैठ की पारी खत्म हुई तो एक-एक कर अनू, वरु, हरु सभी लड़के गाड़ी में बैठे। इनमें छोटे-बड़े सब तरह के थे। गाड़ी खींचते-खींचते नरू हैरान ! फिर भी उसने उत्साह के साथ सभी को गाड़ी की सैर करायी। सभी को सैर करा चुकने के बाद वह सबकी ओर देखता हुआ बोला, 'अब जरा मुझे गाड़ी में खीचो।'

सभी लड़के बगले झाँकने लगे। वह समझ गया, उसे गाड़ी में बिठाकर कोई खींचने को तैयार नहीं। उस पर क्या यही कृपा कम थी कि गाड़ी में बैठकर उसे कृतार्थ किया गया था, फिर उसे गाड़ी में बिठाकर घुमाने का सवाल की कहाँ पैदा होता है। सभी ने हाव-भाव से यह जाहिर कर दिया।

'वाह, सबको गाड़ी की सैर करायी, और मेरी बारी में...'

मेरा जी चाहा कि उसे गाड़ी में बिठाकर गाड़ी खीचूँ। लेकिन समवयसी लड़कों के सामने उपहास के भय या उनके खिलाफ खड़े होने का साहस न होने की वजह से मैं अपनी जगह से में हिला भी नहीं। वह गाड़ी खींचकर चला गया। इनमें आपस में पहले ही क्या मंत्रणा हो चुकी थी, मैं नहीं जानता था। गाड़ी के कुछ दूर जाते न जाते लड़कों में से किसी एक लड़के ने बड़ा-सा पत्थर गाड़ी पर दे मारा।

गाड़ी का निचला हिस्सा हचमचा कर माचिस की डिबिया की तरह टूट गया। नरू ने पीछे मुड़कर देखा और अवाक् रह गया। फिर जल्दी-जल्दी उसने गाड़ी को हुए नुकसान का अंदाज़ लगाया और अगले पल बेहद आश्चर्य से हमारी ओर देखा। एकाएक उसकी नजरें मुझ पर टिक गयीं। उसकी आँखों की वह व्यथा भरी विस्मय की अप्रत्याशित अबूझ दृष्टि मेरे सीने में तीर-सी बिंधी। जैसे कह रहा हो, 'तू भी इनके साथ, टूनी ?'

किंतु वह किसी से कुछ बोला नहीं और टूटी गाड़ी के नजदीक बैठा रहा। ...इससे पहले हमारा दल वहाँ से सरक गया था।

वह वहाँ काफी देर तक बैठा-बैठा गाड़ी को हिला-डुला कर देखने लगा कि उसका टूटा हुआ निचला हिस्सा कैसे ठीक हो सकता है। निकट ही फूलों के पेड़ की डाल पर फूल हवा में डोल रहे थे, उसी के पास एक झुरमुट में कुछ देर बैठ कर गाड़ी ठेलकर ले गया।

सारी रात मुझे अच्छी तरह नींद नही आयी। सुबह उसके घर जाकर उसका सारा हाल मालूम कर आता तो अच्छा होता, लेकिन नहीं सका। नरु रोज सुबह

आता था। उस दिन नहीं आया। जा कर गलत रूठ कर गलत समझ बैठा था।

दो-तीन दिन करके लगभग एक सप्ताह बीत गया।

थोड़े दिनों के बाद ही मैं घर के सब लोगों के साथ मामा के घर मासी की शादी में गया। वापस लौटने में आठ-दस महीने लग गए।

वापस आकर नरू को दुबारा नहीं देख पाया। पिछले पौस के महीने वह खाँसी से मर गया था। वापस आने के दसेक दिनों के बाद मैं एक दिन उसके घर गया था। नरू की माँ ने आँगन में धूप में बेर सुखाने को रखे थे, उन्हें बटोर रही थी, मुझे देखकर बोली, 'टूनी, तुम लोग आ गए ?...'

मेरे जवाब देने से पहले ही उसकी माँ बुक्का फाड़कर रोने लगी। बोली, 'फिर भी एक तू है, जो आया। क्या और कोई आएगा इस घर में ? नरू तो मुझे धोखा देकर चला गया, भैया ! बैठ-बैठ, घर में पके संतरे रखे हैं, काटकर देती हूँ, नमक लगाकर खाएगा न ! सब पका पड़ा रहता है, कोई खाता नहीं। नरू तो खूब खाता था। तू भी खा न !'

शरत् की दुपहरी थी। निर्मल नीले आकाश के नीचे उदास धूप में पंख फैलाए न जाने कौन-सा पक्षी उड़ा जा रहा था। कहीं टूटी-फूटी छत में घुग्घु बोल रहा था। आँगन की ठण्डी हवा में सूखने बेरों की खुशबू भरी हुई थी।

नरू की वही ठेल गाड़ी देखी। लकड़ी के ढेर में नीचे दबी पड़ी थी। लगता था, किसी ने गाड़ी को छुआ भी नहीं था।...

❑

बहुत पुरानी घटना होते हुए भी आँखें बंद करके सोचते ही सब कुछ नजर आ जाता था—बीते जमाने में आठ साल का वह छोटा लड़का ठेलागाड़ी खींचता हुआ भटक रहा थे। निर्जन दुपहरी में घुग्घू की आवाज के बीच उसकी गाड़ी भागी जा रही है। मुहल्ले के जाामुन के बाग की छाया में...हमारे घर के सामने वाले बड़े पेड़ के नीचे वाले रास्ते से वह लाल चेहरे और आशा व आनंद से दमकती आँखों से गाड़ी खींचता चला आ रहा है। कभी नारियल के पेड़ों के नीचे से गुजराता हुआ नजर आता तो कभी पटू के बड़े आम के पेड़ के नीचे से....जाते-जाते क्रमश उसकी आकृति माइति-पोखर के मोड़ वाले रास्ते में सुपारी कि पेड़ों की कतार की ओट में अदृश्य हो जाती।

●

बड़ी लड़की

सहायहरि चाटूज्यो ने आँगन में पाँव रखते ही पत्नी से कहा, 'एक बड़ी बाटी या कटोरी, जो कुछ भी हो, जरा देना तो। ताड़क ताऊ ने पेड़ काटा है, जरा बढ़िया रस ले आऊँ।'

पत्नी अन्नपूर्णा घासफूस की रसोई के द्वार पर बैठी शीत-काल की सुबह के समय नारियल तेल की बोतल में तीली से जमा हुआ तेल निकाल कर बालों को लगा रही थी। पति को आते देखा तो झटपट देह के कपड़े जरा-से नीचे कर लिए, मगर बाटी या कटोरी निकालकर देने लिए बिंदु-मात्र भी रूचि नहीं दिखायी, इतना ही नहीं, कुछ बोली भी नहीं।

सहायहरि आगे बढ़कर बोले, 'क्या हुआ, 'बैठी ही रह गयी ? एक कटोरी दो न। उफ, खेंती-चेंती सब कहाँ गयीं ? तुम तो तेल लगाकर शायद उठोगी नहीं।'

अन्नपूर्णा ने तेल की बोतल सरकाकर पल भर पति की ओर देखा, फिर अत्यंत शांत स्वर में पूछा, 'जरा सुनू तो, तुम क्या ठानकर आए हो ?'

पत्नी का जरूरत से ज्यादा शांत स्वर सुनकर सहायहरि के मन में भय का संचार हो आया। समझ गए कि यह तूफान के पहले की शांति है, वे चुपचाप तूफान की प्रतीक्षा करने लगे।

अन्नपूर्णा और भी ज्यादा शांत स्वर में बोली, 'देखो जी, मैं कहे देती हूँ, रंगबाजी मत करो। नाटक करना हो तो किसी और समय कर लेना। तुम कुछ जानते नहीं, या कोई खोज-खबर नहीं ? जिसके घर में इतनी बड़ी लड़की हो, वह भला मछलियाँ पकड़कर और रस पीकर कैसे दिन गुजार सकता है, यह बता सकते हो ? गाँव में कैसी बातें हो रही हैं, यह भी पता है ?'

सहायहरि ने आश्चर्य से पूछा, 'क्या हुआ ? कैसी बातें ?'

'कैसी बातें—यह जाकर पूछो चौधरियों के घर ? छोटे लोगों के मुहल्ले में भटक-भटक कर जन्म बिताने से शरीफों के गाँव में नहीं रहा जा सकता।...समाज में रहने के लिए समाज को मानकर चलना होता है।'

सहायहरि विस्मित होकर कुछ बोलने ही जा रहे थे, कि अन्नपूर्णा पूर्ववत स्वर में फिर बोली, 'तुम्हें सब समाज से बेदखल करेंगे, कल चौधरी के चण्डीमंडप में यह सब बातें हुई हैं। हमारी हाथ का छुआ पानी अब कोई पिएगा नहीं। हमने लड़की की शादी जो नहीं की। कहते हैं वह अभागी लड़की है। गाँव के किसी काम में तुमको अब कोई बुलाने नहीं आएगा। जाओ, तुम्हारे लिए तो अच्छा हुआ। अब जाकर छोटे मुहल्ले में बसकर जिंदगी काटो।'

सहायहरि निश्चिंतता से बोले, 'ओह, यही बात थी। मैं भी कहूँ, न जाने क्या चक्कर है। समाज से बेदखल ! सभी तो बेदखल हो गए। बस, रह गए हैं एक कालीमय ठाकुर। ओह...'

अन्नपूर्णा तेल के बैंगन की तरह जल उठी, 'क्यों, तुम्हें बेदखल करने में ज्यादा कुछ लगता है क्या ! तुम क्या समाज के सिरमौर हो या कोई मातब्बर आदमी ? चावल नहीं, चूल्हा नहीं, घर में पीतल का कड़ा नहीं, चौधरियों के लिए तुम्हें समाज से बेखदल करने में मुश्किल क्या है ? सच भी तो है, इधर घर में लड़की पहाड़-सी अड़ी पड़ी है।' हठात् स्वर को धीमा करके आगे बोली, 'पन्द्रह साल की तो हो गयी, बाहर कम बताकर कब तक छिपाएँगे, क्या लोगों की आँखें नहीं?'...फिर तीखें स्वर में बोली 'न उसकी शादी कराते हो, न कोई कोशिश करते हो। क्या मैं जाऊँगी इधर-उधर उसके लिए लड़का ढूँढने?'

जब तक वे सशरीर पत्नी के सामने खड़े हैं, तब तक उसके स्वर के नम्र होने की कोई संभावना नहीं, यह समझते ही उन्होंने ताखे से काँसे की एक बाटी उठा ली और दरवाजे की ओर चल पड़े। पर दरवाजे के पास पहुँचते ही हठात कुछ देखकर ठिठक गए और प्रसन्नतापूर्वक बोले, 'यह सब क्या हैरी ? अरी खेंती, यह सब कहाँ से उठा लायी। वाह, यह तो...'

चौदह-पन्द्रह साल की लड़की अपने पीछे दो छोटी-छोटी लड़कियों को लेकर घर में घुसी। उसके हाथों में एक बोझा पोई साग था। डण्ठल मोटे और पीले-पीले। देखते ही लग रहा था कि किसी ने पका साग उखाड़ फेंका और लड़की वही उठा लायी है। दो छोटी लड़कियों में एक का हाथ खाली था और दूसरी के हाथ में साग के पत्तों में कोई द्रव्य।

बड़ी लड़की खूब लम्बी थी, चेहरा गोल-मटोल, सिर के बाल रूखे-सूखे और बिखरे हुए। कलाई में काँच की पतली-पतली चूड़ियाँ एक सेफ्टी-पिन से बंधी पड़ी थीं। पिन की उम्र खोजने जाओ तो वह प्रागैतिहासिक युग की प्रतीत होगी। इस बड़ी लड़की का नाम ही शायद खेंती था, क्योंकि उसने जल्दी से मुड़कर पीछे आ रही लड़की के हाथ से साग के पत्तों में रखा द्रव्य लेकर कहा, 'यह देखो, चिमड़ी

मछली लायी हूँ, बाबा। गया ताई से रास्ते में ले ली। देना नहीं चाहती थी। कहती थी तेरे बाबा के ऊपर पहले की भी दो पैसे की ऊधारी बाकी है। मैंने कहा, दे दो गया ताई, मेरे बाबा तुम्हारे दो पैसे लेकर भाग नहीं जाएँगे, और यह साग..घाट के किनारे राय चाचा बोले, ले जाओ। देखो, कितना मोटा है...'

अन्नापूर्णा चीखकर बोली, 'वापस ले जा। वाह, क्या अमृत दिया है उन लोगों ने तुम्हें। पका साग लकड़ी हुआ जा रहा है, दो दिन के बाद फेंक ही देते, पर तुम पर मेहरबानी कर दी—ले जाओ, और ये उठाकर ले आयीं यहाँ। अच्छा ही हुआ, उन्हें फेंकने का कष्ट नहीं करना पड़ेगा। उफ्, जितने मूढ़ और बेवकूफ थे, सब मरने के वास्ते मेरी छाती पर चढ़ आए हैं। क्यों री ऊँट-सी लड़की, तुमसे कह रखा है न, घर से बाहर पाँव धरने की जरूरत नहीं।...शर्म नहीं आती, मोहल्ले-मोहल्ले भटकते हुए। शादी हो गयी होती तो अब तक चार बच्चों की माँ होती। खाने के अलावा और कोई समझ नहीं। बस, कहाँ साग मिलेगा, कहाँ बैंगन ! और ये, तेरे बाबा भटकते हैं कि कहाँ रस मिलेगा, कहाँ राख और कहाँ बाँस...। मैं कहती हूँ, फेंक दे—फेंक दे।

लड़की ने शाँत मगर भय-मिश्रित नजरों से माँ की ओर देखा और हाथ का बंधन ढीला कर दिया, साग का बोझा जमीन पर आ पड़ा। अन्नपूर्णा की डाँट जारी रही, 'जा तो राधी, इस आफत को खींचकर पीछे वाले तालाब में फेंक आ। जा, फिर अगर घर में यह सब लायी तो मार-मार कर भुर्ता बना दूँगी।'

बोझा धरती पर पड़ा था। छोटी लड़की मशीनी पुतले की तरह साग का ढेर उठाकर पिछवाड़े वाले तालाब की ओर चल पड़ी, मगर उससे इतना बड़ा बोझा संभाला नहीं गया, कई डण्ठल इधर-उधर से निकलने लगे। सहायहरि की बच्चियाँ माँ से बहुत डरती थीं।

सहायहरि धीरे से बोले, 'बेचारी बच्चियाँ लायी हैं कि खाएँगे। पर तुम खामोख्वाह...'

साग का बोझा ले जाती लड़की ने एक बार पीछे मुड़कर माँ की ओर ताका। अन्नपूर्णा बोली, 'नहीं-नहीं, ले जाओ। कोई जरूरत नहीं इसे खाने की। लड़कियाँ होकर यह सब करना ठीक नहीं। मोहल्ले-मोहल्ले जाकर पका साग उठा लाएंगी भीख में ! जाओ जाओ, चुपचाप जाकर फेंक आओ।'

सहायहरि ने बड़ी लड़की की ओर देखा—उसकी आँखों में पानी भर आया था। उनके मन को बड़ी तकलीफ हुई। लेकिन भले ही लड़की का दुख समझतें हों, फिर भी साग का पक्ष लेकर वे दोपहर को पत्नी को नाराज करने का साहस नहीं जुटा पाए।...चुपचाप बाहर निकल गए।

❑

खाना बनाते वक्त बड़ी लड़की की कातर निगाहों का ख्याल आते ही अन्नपूर्णा को याद आया—पिछली बार घर में जब पोई साग बना था, खेंती ने लाड़ से कहा था, 'माँ, आधा तो खाऊँगी मैं अकेले, बाकी आधा खाना तुम सब मिलकर।'

घर में कोई नहीं था, वह खुद उठकर गयी और आँगन व दरवाजे के पास जितना साग छितरा गया था, उठा लायी। साग में चिंगड़ी मछली डालकर उसने चुपचाप तरकारी बना डाली।

दोपहर को खेंती खाना बैठी तो साग देखकर माँ की ओर विस्मय और खुशी से डरते-डरते ताका। दो-तीन बार यहाँ-वहाँ से टहल कर अन्नपूर्णा ने आकर देखा कि पत्ते पर बेटी ने साग का एक दाना भी नहीं छोड़ा। उसकी बेटी इस साग की कितनी दीवानी है, यह वह जानती थी। पूछा, 'क्यों री खेंती, थोड़ा साग और दे दूँ ?'

खेंती ने तत्काल गर्दन हिलाकर इस आनंदकारी प्रस्ताव का समर्थन किया। न जाने क्या सोचकर अन्नपूर्णा की आँखों में पानी भर आया।

❑

कालीमय के चण्डीमण्डप में उस दिन शाम को सहायहरि की पुकार पड़ी। संक्षिप्त-सी भूमिका बाँधने के बाद कालीमय उत्तेजित स्वर में बोले, 'पहले वाले दिन क्या अब रहे, भैया ! यही देखो, केष्टो मुखुयो क्या क्या कहते थे ? ढंग का लड़का नहीं मिला तो लड़की की शादी नहीं करूँगा—यह कह-कहकर उसने कितना बावेला मचाया था। मगर अन्त में हरि के लड़के को धर-पकड़ कर लड़की ब्याह दी, तब जाकर चैन मिला। ढंग का लड़का ! हूँ, इसका मतलब ?' फिर स्वर धीमा करके आगे बोले, 'पहले जो समाज में अनुशासन था, वो तो अब रहा ही नहीं। दिन-ब-दिन हालत बिगड़ती जा रही है। ज्यादा दूर जाने की जरूरत नहीं, अपनी ही देखो, तुम्हारी बेटी तेरह साल की...'

सहायहरि बीच में ही बोले, 'इस श्रावण में तेरह की होगी।'

'ओहो, तेरह और सोलह में अन्तर ही क्या है ? हूँ, बताओ, तेरह और सोलह है कोई अन्तर ? और फिर वह तेरह की हो या सोलह की या पचास की, इसकी हमे परवाह नहीं। अपना हिसाब अपने पास रखो। हमें तो यह बताओ, लड़की बड़ी हो गयी, तुम चुप क्यों बैठे हो ? यह तो सरासर लड़की को उच्छृंखल बनाना है। अब तक तो उसका ब्याह हो ही जाना चाहिए, कि नहीं ?...समाज में रह कर तुम मनमानी करोगे और हम बैठे-बैठे चुपचाप देखेंगे, इस भुलावे में तुम

मत रहना। समाज में बामनो की जात कलंकित नहीं करना चाहते तो बेटी के ब्याह का बंदोबस्त कर डालो।....लड़का-लड़का ! क्या राजकुमारों के अलावा और लड़के हैं ही नहीं।...गरीब हो, कुछ दे नहीं पाओगे, यह सोचकर श्रीमन्त मजुमदार का लड़का ठीक कर दिया था। लिखा-पढ़ा नहीं है तो क्या हुआ ? कोई जज-मजिस्ट्रेट नहीं हुआ तो क्या वह इंसान नहीं ? क्या नहीं था उनके पास ? बढ़िया मकान, बगान और तालाब–सब कुछ। सुना है इस बार जमीन में धान की फसल भी खूब उगाई है। बस, बहुत हुआ। दो भाइयों की क्या कमी ?...

कहानी यों थी–मणिगाँव के उक्त मजुमदार महाशय के पुत्र को कालीमय ने ही खेंती के लिए तय किया था। कालीमय इतना कष्ट झेलकर सहायहरि की बेटी के ब्याह का रिश्ता मजुमदार महाशय के लड़के से क्यों तय करने गए थे, इसके कारण बताते हुए कुछ लोग कहते हैं कि कालीमय ने मजुमदार महाशय से बहुत रूपये उधार ले रखे थे, कई दिनों का सूद भी बाकी है–जल्दी ही उनपर नालिश भी होगी, आदि। यह अफवाह सिर्फ हवाई ही नहीं थी, बल्कि इसका आधार भी नहीं था। यह तो दुश्मनों की फैलायी बातें थीं। जो भी हो, लड़के वालों से बात तय हो जाने के बाद सहायहरि को पता लगा कि लड़के ने कुछ महीने पहले अपने गाँव में कुछ ऐसा कर डाला था कि गाँव की एक वधु के रिश्तेदारों नें उसकी जमकर पिटायी की थी कि कुछ दिनों तक बिस्तर से उठ नहीं सका था। ऐसे लड़के से बेटी कैसे ब्याह देते, सो उन्होंने यह रिश्ता तोड़ दिया था। दो दिन के बाद ! सुबह उठकर सहायहरि आँगन में पेड़ों की दरार से आने वाली हलकी धूप की तपिश में बैठे हुक्का खींच रहे थे। बड़ी लड़की खेती ने आकर धीरे से कहा, 'बाबा, जाओगे नहीं? माँ घाट चली गयी...'

सहायहरि ने एकाएक घर के बगल में घाट के पथ की ओर न जाने क्यों ताक लिया। फिर धीमी स्वर में बोले, 'जा, जल्दी से हँसुआ ले आ।' बात खत्म करके वे उत्कंठा से जोर-जोर से हुक्का खींचने लगे और फिर न जाने क्यों घाट के पथ की ओर एक बार पुनः सतर्कता से देख लिया। इस बीच एक अत्यंत भारी लोहे का कुदाल दोनों हाथों में थामे खेंती आ पहुँची। दोनों बाप-बेटी दरवाजे से बाहर निकल गए। इनका हाव-भव देखकर लग रहा था, से दोनों किसी के घर सेंध मारने के ध्येय से जा रहे हैं।

अन्नापूर्णा नहा चुकने के बाद घर में चूल्हा जलाने की तैयारी कर रही थी। तभी मुखुयो-बाड़ी की छोटी लड़की दुर्गा ने आकर कहा, 'ताई-माँ, माँ ने कहा है कि ताई-माँ से जाकर बोल, माँ ने बुलाया है, कुछ काम है।'

मुखुयो-बाड़ी दूसरे मुहल्ले में थी–रास्ते में एक जगह सघन वन था। सर्दी

की सुबह में लता-लता से खुशबू-सी निकलती महसूस हो रही थी। एक पूँछ वाला पीला पक्षी इस पेड़ से उस पेड़ से फुदक रहा था।

दुर्गा ने उँगली से इशारा करते हुए पूछा, 'ताई-माँ, यह कौन-सा पक्षी है।'

अन्नापूर्णा ने पक्षी की ओर देखा तो कान किसी आहट पर जा लगे। सघन वन के अन्दर कहीं थप्-थप् की आवाज हो रही थी...जैसे कोई कुछ खोद रहा हो। दुर्गा के बोलते ही वह आवाज बंद हो चुकी थी। अन्नपूर्णा पल भर वहीं ठिठक कर खड़ी हो गयी, फिर चलना शुरू कर दिया। उनके कुछ दूर जाते न जाते वन में फिर से थप्-थप् की आवाज गूँज़ने लगी।

काम निपटा कर लौटने में अन्नपूर्णा को कुछ विलम्ब हो गया। घर आकर देखा, खेंती आँगन की धूम में बैठी जूड़ा खोल रही है, सामने तेल की कटोरी पड़ी है। उसने तीखी निगाहों से बेटी की ओर देखा और रसोई में जाकर चूल्हा जलाने बैठ गयीं लड़की से कहा, 'अभी तक नहाने नहीं गयी ! कहाँ थी इतनी देर ?'

खेंती ने जल्दी से उत्तर दिया, 'बस, जा रही हूँ अभी गयी और अभी आई। खेंती नहाने चली गयी तो अगले पल ही सहायहरि उत्साह से पन्द्रह-सोलह सेर आलू का बोझ उठाए आ पहुँचे। पत्नी पर नजर गयी। सफाई देते हुए बोले 'आलू लाया हूँ। वो उस मुहल्ले का चौकीदार है न, रोज कहता था—ठाकुर-महाराज, आपके पिताजी थे तो हर महीने उनके पाँव की धूल इधर पड़ जाती थी। मगर अब तो आप इधर आते ही नहीं। आज आए ही हैं तो ये आलू लेकर कृतार्थ कीजिए'

अन्नपूर्णा ने एकटक पति की ओर देखकर कहा, 'जरा बताओ तो, कुछ देर पहले वन में क्या कर रहे थे ?'

सहायहरि अवाक होकर बोले, 'मैं ! नहीं, मैं तो वन में नहीं गया था। सच, मैं तो अभी पहुँचा हूँ।' सहायहरि का हाव-भाव देखकर प्रतीत हो रहा था, जैसे वे तो अभी-अभी आकाश से टपक पड़े है।

अन्नपूर्णा बोली, 'अब चोरी करना ही रह गया है। आधी से ज्यादा उम्र बीत गयी, अब तो झूठ मत बोलो।...मैं सब जानती हूँ तुमने सोचा या मैं तो घाट गयी हूँ रास्ता साफ है। मुझे दुर्गा की माँ ने बुलाया था। तुमने बुलाया था, उसके मुहल्ले जाररही थी कि वन में थप्-थप् की आवाज सुनी।...तभी मैं समझ गयी थी। हमारी आहट सुनकर आवाज बंद हो गयी थी, पर जरा-सा हमारे आगे बढ़ते ही आवाज फिर शुरू। तुम्हारा तो ईहलोक भी नहीं रहा, परलोक भी नहीं रहा। तुम चोरी करो, डाका डालो या कुछ भी करों, मगर बेटी को इस सबसे दूर रखो।'

सहायहरि ने हाथ हिला-हिलाकर कई प्रमाण दिए कि वह वन में नहीं गया था, मगर पत्नी की तीखी निगाहों के सामने ज्यादा देर तक उनका झूठ चला नहीं।

आधे घण्टे के बाद खेंती नहाकर घर में घुसी। आलुओं के ढेर की ओर तिरछी निगाहों से यों ताका, जैसे पहली बार देख रही हों फिर वह आँगन में कपड़े सुखाने लगी।

अन्नापूर्णा ने पुकारा, 'खेंती, जरा इधर तो आना...'

माँ की पुकार सुनकर खेंती का चेहरा सूख गया। वह माँ के पास चली आई तो माँ ने पूछा, 'ये आलू तुम दोनों मिलकर उठा लाए हो न ?'

खेंती ने एक बार माँ के चेहरे की ओर देखा, फिर जमीन पर पड़े आलुओं को। वह एकाएक माँ की ओर देखकर जल्दी से मकान के बाहर बाँसों के झुरमुट को निहरने लगी। उसके माथे पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आई थीं। जवान से कुछ बोला नहीं गया।

अन्नपूर्णा ने सख्ती से पूछा, 'कुछ बोलती क्यों नही, बड़की ? ये आलू तू लाई है कि नहीं ?'

खेंती ने निरीहता से उत्तर दिया, 'हाँ'।

अन्नपूर्णा तेल में पड़े बैंगन की तरह जलकर बोली, 'पाजी, आज तेरी पीठ पर लकड़ियाँ तोड़ूँगी, तभी छोड़ूँगी। वन में जाकर आलू चुराती है ? बेवकूफ लड़की, कब की ब्याह लायक हो गई है और वन-वन डोलती फिरती है। मालूम भी है, वहाँ दिन-दोपहर में भी बाघ छिपे बैठे रहते हैं, और वहाँ से आलू उठा लाई। अगर गोसाइयों का चौकीदार पकड़ लेता तो ? तब क्या तेरा कोई ससुर आकर बचाता तुझे। हमारे पास होगा तो खाएँगे, नहीं होगा तो नहीं खाएँगे। दूसरे की चीज में हाथ डालने का मतलब ? उफ्, इस लड़की का मैं क्या करूँ, माँ।

दो-तीन दिन के बाद एक दिन शाम को मिट्टी से लथपथ खेंती आकर माँ से बोली, 'माँ-माँ, चल, एक चीज दिखाऊँ ?' अन्नपूर्णा ने जाकर देखा। टूटी दीवार के किनारे जरा-सी पथरीली जमीन थी, उसे छोटी बहन के साथ मिलकर साफ कर दिया है। खेंती ने और वहाँ साग-सब्जियाँ उगाने की जगह तैयार कर रखी है। इधर-उधर कुछ पौधे रखे थे और उनके बीच ढेर सारे पोई साग के पौधे भी।

अन्नपूर्णा हँसकर बोली, 'धत् पगली, भला इस समय कोई पोई साग रोपता है ? बारिश के समय रोपा जाता है। इन दिनों तो बिना पानी के पौधे मर जाएँगे।'

खेंती बोली, 'क्यों, मै रोज पानी डाल दूँगी।'

अन्नपूर्णा बोली, 'देखो, शायद बच भी जाएँ ? आज-कल रातों को ओस भी खूब गिरती है।'

बेहद सर्दी पड़ रही थीं सुबह उठकर सहायहरि ने देखा, उनकी दो छोटी

लड़कियाँ कंबल ओढ़े आँगन में कटहल तले खड़ी धूप खिलने का इन्तजार कर रही हैं। एक टूटी टोकरी में खेती सर्दी से काँपती-काँपती मुखुयो-बाड़ी से गोबर उठा लाई थी। सहायहरि बोले, 'अरे बिटिया, सुबह उठकर बदन पर कपड़ा तो डाल लिया कर। देखती नहीं, कितनी सर्दी है।'

'अच्छा, बाबा। अभी पहन लेती हूँ। इतनी सर्दी तो है नहीं। बहुत सर्दी है बिटिया। कपड़े पहल ले। पाँच तरह की बीमारियाँ लग सकती हैं, समझी।' सहायहरि बाहर निकल गए। सोच रहे थे, उन्होंने कई दिनों से बेटी के चेहरे को अच्छी तरह देखा नहीं। खेंती का चेहरा तो बेहद सुश्री हो गया था।

पोशाक का इतिहास यों था; कई साल बीत गए, हरिपुर-रास के मेले से सहायहरि काले रंग का यह अढ़ाई रूपए का जामा खरीद लाए थे। जगह-जगह से फट जाने के बावजूद उसे कई बार रफू किया गया था, अब पिछले साल से, जब से खेंती का शरीर विकसित हुआ था, यह जामा उसे पूरा नहीं पड़ रहा था। घर-गृहस्थी की इन सब बातों पर सहायहरि का ध्यान कभी नहीं जाता था। पोशाक का जो हाल हो गया था, उससे अन्नपूर्णा भी अनजान थी।

❑

पौष-संक्रांति। शाम को अन्नपूर्णा एक तश्तरी में चावल, मैदा और गुड चटका रही थी, एक छोटी कटोरी में तेल रखा था। खेती केले के पत्ते पर बैठी नारियल की माला गूंथ रही थी। अन्नपूर्णा खेंती की मदद लेने को तैयार नहीं थी। कारण यह कि वह जहाँ-तहाँ बैठती थी, वन-जंगल में भटकती फिरहती थी, उसके कपड़े शास्त्र-सम्मत व साफ-सुथरे नहीं थे। मगर खेंती ने बहुत जोर मारा तो उसे नहला-धुलाकर व साफ कपड़े पहनाकर माँ ने पास में बिठा लिया।

मैदे के गोले मख जाने के बाद अन्नपूर्णा चूल्हे की तरफ जा रही थी कि हठात् छोटी लड़की राधा दाहिना हाथ फैलाकर बोली, 'माँ, जरा-सा दे दे।'

अन्नपूर्णा ने जरा गोला उठाकर अजब-सा मुँह बनाकर राधा के हाथ में रख दिया। मँझली लड़की पूँटी ने दाहिना हाथ जल्दी से पोछकर माँ के सामने फैला दिया, 'माँ, मुझे भी थोड़ा-सा...'

खेंती साफ कपड़ों में नारियल की माला बनाते-बनाते चोर निगाहों से बीच-बीच में इधर ताक रही थी, इस समय खाने को माँगो तो माँ डांटती थी, इसी डर से चुपचाप बैठी थी।

अन्नपूर्णा बोली 'देखूँ तो, खेंती ले आ नारियल की माला, उसमें से तेरे लिए कुछ निकाल रखूँ।'....खेंती ने जल्दी से माला माँ की ओर बढ़ा दी, माँ ने उसमें से गोले का बड़ा टुकड़ा बेटी के लिए निकाल लिया।

मझली लड़की पूंटी बोली, 'जेठी-माँ वालों ने बहुत सारा दूध लिया है, रांगा दीदी खीर बना रही थी, वे लोग बहुत कुछ बना रहे हैं।'

खेंती चेहरा फुलाकर बोली, इस वक्त भला यह सब बनता है क्या। उन्होंने तो सुबह के वक्त ब्राह्मणों को न्यौता दिया था—सुरेन चाचा और दूसरे मुहल्ले के तीनू के बाबा को भी बुलाया था। तब तो चावल की खीर, पूरी और आलू ही दिए थे।'

पूँटी ने पूछा, 'क्यों माँ, बिना खीर के क्या पूजा सम्पन्न नहीं होती ? खेंदी कह रही थी कि बिना खीर के सब बेकार। मैंने कहा, क्यों, हमारी माँ तो सिर्फ नारियल से काम चलाती है, इसमें क्या खराबी है ?'

अन्नपूर्णा ने बैंगन काटते हुए इस सवाल को अनसुना कर दिया।

खेंती बोली, 'खेंती तो ऐसे ही बकती है। हूँ, खेंदी की माँ तो जैसे खूब मिठाइयाँ बनाती है न। क्या खीर बनाने से ही सब-कुछ होता है। एक दिन उनके घर जमाई आए थे तो मैं देखने गई थी तो देखा, ताई-माँ ने उन्हें जो मिठाई दी थी, उसमें से बदबू आ रही थी। भला हमारी माँ जो मिठाई बनाती है, उसमें बदबू आती है ? वो क्या बनाना जाने खीर !'

लापरवाही से इतना कहकर खेंती ने माँ से पूछा, 'माँ, थोड़ा-सा नारियल ले लूँ ?'

अन्नपूर्णा बोली, 'ले ले, मगर यहाँ बैठकर मत खाना। जा, उधर बैठ जा।'

खेंती ने माला में से एक नारियल ले लिया और जरा दूर जाकर खाने लगी। चेहरा अगर मन का दर्पण माना जाए तो उसके चेहरे को देखकर सन्देह की जरा भी गुंजाइश नहीं रह जाती कि वह खूब मानसिक तृप्ति का अनुभव कर रही थी।

घटें भर के बाद अन्नपूर्णा बोली, 'अरे सुनो लड़कियों, तुम सब एक-एक पत्ता बिछाकर बैठो तो। गरम-गरम खाने को दे दूँ। खेंती, पानी मिला भात है सुबह का बाहर निकल ला'। खेंती को माँ का यह प्रस्ताव रूचा नहीं, यह उसके हाव-भाव से प्रकट हो गया। पूंटी बोली, 'माँ, बड़ी दीदी को नारियल की मिठाई ही दे दो। उसे अच्छी लगती है। बल्कि भात रहने दो, हम सबेरे खा लेंगे।

नारियल के मिठाई के एकाध टुकड़े खाने के बाद छोटी लड़की राधा से ज्यादा खाया नहीं गया। उसे मीठी चीज कम ही पसन्द थी। सब खा चुके मगर खेंती अब तक खा रही थी। वह मुँह बन्द कर शान्त-भाव से खाती थी, किसी से खास कुछ बतियाती नहीं थी। अन्नपूर्णा ने देखा, उसने कम से कम भी अठारह-उन्नीस टुकड़े खाए थे। पूछा, 'खेंती, और चाहिए ?' खेंती ने खाते-खाते शान्ति से सहमति सूचक सिर हिला दिया। अन्नपूर्णा ने कुछ टुकड़े और दे दिए। खेंती की आँखों

और चेहरे पर चमक उभर आई। माँ से मुस्करा कर बोली, 'बहुत अच्छे बने हैं, माँ। तुम खामोख्वाह बाजार से खरीदती हो...।' इतना कहकर फिर खाने लगी।

अन्नपूर्णा ने स्नेह से अपनी इस शान्त, निरीह और जरा ज्यादा भोजन-पटु लड़की की ओर देखा। मन-ही-मन सोचा, 'मेरी खेंती जिसके घर जाएगी, उसे खूब सुख देगी। एसी अच्छे स्वभाव की, काम-काज में पटु, डाँटो तो भी चुप रहे, मुँह से चूँ शव्द तक नहीं निकालती, ऊंचे स्वर में किसी ने उसे बोलते नहीं सुर्ना

वैशाख महीने के आरम्भ में सहायहरि के दूर के एक आत्मीय की कोशिश के फलस्वरूप खेंती का ब्याह हो गया। दूसरा विवाह करने के बावजूद पात्र की उम्र चालीस से किसी तरह ज्यादा नहीं थी। फिर भी शुरू में अन्नपूर्णा इस रिश्ते से सहमत नही थी। मगर पात्र सम्पत्ति-संपन्न था, शहर-गाँव में मकान थे, स्लेट, चूने और ईंट के व्यवसाय में दो पैसे बना लिए थे। भला ऐसा पात्र मिलना भी तो मुश्किल होता है।

जमाई की उम्र ज्यादा होने की वजह से अन्नपूर्णा को शुरू-शुरू में जमाई के सामने आने में संकोच हुआ था, पर बाद में कहीं खेंती को दुख न हो, इस कारण वरण के समय उसने खेती का सुपुष्ट हाथ पकड़ कर जमाई के हाथ में थमा दिया था—आँसुओं से उसका गला अवरूद्ध हो गया था, कुछ बोला नहीं जा रहा था।

घर के बाहर एक पेड़ के तले पल भर के लिए वर की पालकी नीचे रखी गई। अन्नपूर्णा ने निगाहें उठा कर देखा, पालकी में से खेंती की सस्ती साड़ी का आँचल लटक रहा था।...अपनी इस अत्यन्त निरीह, सीधी-सादी और जरा ज्यादा भोजन-पटु बेटी को दूसरे के घर एक अपरिचित माहौल में भेजते हुए उसकी छाती फटी जा रही थी। क्या वे लोग खेंती को समझ पाएँगे...।

जाते वक्त खेंती ने नम आँखों से माँ से कहा था, 'माँ, आषाढ़ महीने महीने में ही मुझे बुलवा लेना...बाबा को भेज देना...दो महीने की ही बात है...।'

दूसरे मुहल्ले की ठान दीदी ने कहा, 'तेरे बाबा तेरे घर कैसे जाएँगे री, पहले नाती तो हो ले, तभी...।'

खेंती का चेहरा लाज से आरक्त हो गया। नम आँखों में जरा-सी लज़ीज़ मुस्कान खिल आई। वह रूआँसे स्वर में बोली, 'नहीं, आएँगे कैसे नही ?...देखूँ तो कैसे नही आते।'

❑

फागुन-चैत महीने की शाम को आँगन में धूप में सुखाए आमसत्व बटोरते वक्त अन्नपूर्णा का हृदय हाहाकार करता...उसकी उद्यंड और लालची बेटी अब घर में नहीं रही कि, किसी कोने से अचानक निकल कर आए और उसके सामने हाथ

फैलाकर बेशर्मी से बोले, 'माँ, एक बात है, आभसत्व का जरा-सा टुकड़ा तो दे दो'

❑

एक साल से ऊपर हो गया था। दुबारा आ गया आषाढ़ महीना। बारिश खुब हो रही थी। घर के द्वार पर बैठे सहायहरि अपने पड़ोसी विष्णु सरकार के साथ बातचीत कर रहे थे। सहायहरि ने हुक्का सजाते हुए कहा, 'तुम रहने दो, ऐसे ही होगा, भैया! हमारी जैसी स्थिति वाले लोगों को उससे ज्यादा और क्या जुटेगा।'

विष्णु सरकार ताड़ के पत्तों की चटाई पर उकड़ूँ हो कर बैठे थे, दूर से कोई देखे तो सोचे, वे रोटी के वास्ते मैदा गूँथ रहे हैं, गला साफ कर बाले, 'हाँ भैया, ठीक कहते हो। पर इसके अलावा मैं जो दूँगा, नगद ही दूँगा। तुम्हारी लड़की को हुआ क्या था ?'

सहायहरि ने हुक्के से पाँच-छः कश लिए और खाँसते हुए बोले, 'सुना था, चेचक हुआ था। चक्कर क्या था, जानते हो ? लड़की को किसी तरह भी भेजना नहीं चाहते थे। अंदाजन अढ़ाई सौ रुपए बाकी थे, कहने लगे, पहले वो रुपए दो, फिर बेटी ले जाओ।'

'एक ही पाजी थे...।'

'मैंने कहा, रुपए धीरे-धीरे चुका दूँगा। पूजा के वक्त तीस रुपए लेकर वहाँ गया था। उन्होंने बेटी की खूब बुराई की। कहने लगे, छोटे लोगों की लड़कियों की तरह चाल-चलन है, हमेशा खाने की दीवानी...और भी कुछ ! पौष माह में फिर देखने गया—लड़की को यों फेंक कर रहा नहीं जाता था, समझ रहे हो न।'

सहायहरि एकाएक चुप हो गए और कुछ देर तक हुक्का खींचते रहे। थोड़ी देर तक दोनों में से कोई नहीं बोला।

कुछ क्षणों के बाद विष्णु सरकार बोले, 'फिर ?'

'मेरी पत्नी ने रो-पीटकर जिद की तो पौष माह में लड़की को देखने गया। उफ़्, लड़की का तो बहुत बुरा हाल कर रखा था उन लोगों ने। सास सुना-सुना कहने लगी, बिना सोचे-समझे छोटे लोगों के साथ रिश्ते करने का यही अंजाम होता है।'...फिर विष्णु सरकार की ओर देखने हुए बोले, 'जरा तुम्हीं बताओ, हम छोटे लोग हैं या बड़े लोग ! तुमसे तो कुछ छिपा नहीं भैया, तुम्हीं बताओ, परमेश्वर चटूज्या के नाम से नील कोठी के अमल में इस अंचल में गाय व शेर एक घाट पानी पीते थे कि नहीं। आज मैं छोटे लोग हो गया...वाह।' प्राचीन आभिजात्य के गौरव से सहायहरि शुष्क स्वर में ग़ूढ़ हँसी हँसे।

विष्णु सरकार ने समर्थन में कुछ अस्पष्ट कहा और कई बार गर्दन हिलाई।

'इसके बाद फागुन में ही उसे चेचक हो गया। ऐसे पाजी थे वे लोग कि चेचक के शरीर में प्रकट होते ही मेरी एक दूर की बहन के यहाँ उसे फेंक गए। हमें न खबर भेजी, न कोई सूचना। बहन के यहाँ उसे आई। तो मैं वहाँ गया..।'

'देख नहीं पाए ?'

'ना ! वे ऐसे पाजी निकले कि बीमारी के दौरान ही उसके गहने-वहने निकाल कर बहन के यहाँ छोड़ गए।...जाने दो, अब चलो, चला जाए, बहुत समय हो गया...।'

❑

इसके बाद कई महीने बीत गए। आज फिर पौष-पर्व का दिन था। इस बार पौष माह के जाते-जाते इतनी सर्दी पड़ी थी कि अत्यन्त बूढ़े लोगों का भी कहना था कि ऐसी सर्दी पहले कभी न देखी, और न सुनी।

शाम के समय रसोई घर में बैठी अन्नपूर्णा मिठाई बनाने के वास्ते चावल पीस रही थी। पूंटी व राधी चूल्हे के पास बैठी आग सेंक रही थीं।

राधी कह रही थी, 'पानी थोड़ा और मिला दो माँ, आटा सख्त हो जाएगा।'

पूंटी बोली, 'क्यो माँ, जरा-सा नमक डालता ठीक नहीं रहेगा ?'

'ओह माँ, देख तो राधी का आँचल कहाँ लटक रहा है, आग लग लाए तो...।'

अन्नपूर्णा नाराज होकर बोली, 'सरक कर बैठो न ! आग पर सवार होकर बैठे बिना आग नहीं ताप सकते। इधर आ...।'

चावल के आटे के गोले बन गए। उन्हें चूल्हे पर चढ़ाकर लगातार चलाने लगी...देखते ही मीठी आँच में मिठाई की पीठियाँ फूल गयीं।

पूँटी बोली, 'दो माँ, पहली पीठी भगवान को दे आऊँ।'

अन्नपूर्णा बोली, 'अकेली मत जा, राधी को साथ ले जा।'

बाहर खूब ज्योत्स्ना खिली हुई थी। घर के पीछे पेड़ो के झुरमुट के सिरे पर ज्योत्स्ना छितराई हुई थी।

पूंटी और राधी ने दरवाजा खोला तो एक सियार सूखे पत्तों पर सरसराता हुआ पेड़ों के घने झुरपुट में जा भागा। पूंटी ने जोर से पीठी पेड़ों के झुरमुट के सिरे की तरफ फेंक दी। फिर चारों ओर की निर्जन निस्तब्धता से डरकर दोनों लड़कियाँ भाग कर दरवाजे से अन्दर घुस गईं और जल्दी से दरवाजा बन्द कर दिया।

पूंटी और राधी वापिस आयीं तो अन्नपूर्णा ने पूछा, 'दे आई?'

पूंटी बोली, 'हाँ माँ, तुम पिछले साल जहाँ से चारा लाई थीं, ठीक वही फेंक आई।'

❑

उस रात काफी समय गुजर गया। पीठियाँ बनाना लगभग समाप्त हो आई थीं...रात भी काफी हो गई थी।...ज्योत्स्ना के आलोक में घर के पीछे वाले वन में बड़ी देर से एक कठफोड़वा पाखी ठक-ठक कर रहा था...यह स्वर भी जैसे तंद्रिल हुआ जा रहा था...दोनों बहनों को खिलाने के वास्ते केले के पत्ते चीरते-चीरते पूँटी अन्यमनस्क-सी एकाएक बोल पड़ी, 'दीदी को पीठियाँ बहुत बहुत पसन्द थीं...।'

❑

तीनों पल भर के लिए निर्वाक-सी बैठी रह गयीं, इसके बाद उन तीनों की नजरें न जाने कैसे अपने-आप आँगन के एक कोने में उठ गयीं—वहाँ घर की उस लालची लड़की का बड़ी साध से रोपा गया पोई साग का झुण्ड उग आया था। कार्तिक महीने की शीत पाए बारिश के पानी में कोमल-कोमल हरे पत्ते पूरी तरह खिल रहे थे और झूम रहे थे...जीवन के लावण्य से भरपूर।

●

उपेक्षिता

राह चलते-चलते उसके साथ मेरा परिचय हुआ था।

यह शायद दो-तीन साल पहले की बात है। नया-नया कॉलिज से बाहर निकला था कि तभी बाबा का देहान्त हो गया। घर-परिवार की स्थिति बेहतर नहीं थी, सो स्कूल-मास्टरी की नौकरी पाते ही मुझे हुगली जिले के एक दूर के गाँव में जाना पड़ा।...किसी समय उस गाँव की हालत जरूर बेहतर रही होगी, मगर जब मैं वहाँ पहुँचा, वहाँ की स्थिति शोचनीय थी। खासा बड़ा गाँव था, उसमें कई मुहल्ले थे, गाँव एक सिरे से दूसरे सिरे तक लगभग एक कोस में फैला हुआ था। आम-कटहल के जंगल से सारा गाँव अंधेरे से आच्छादित था।

मैं उस गाँव में नहीं रहता था। गाँव से लगभग एक मील दूर रेलवे स्टेशन था। स्टेशन-मास्टर के एक लड़के को पढ़ाने का दायित्व लेकर मैं वहीं रेलवे के पी॰ डब्लू॰ डी॰ के एक परित्यक्त बंगले में रहता था। चारें ओर निर्जन मैदान था, बीच-बीच में ताल-बागान। स्कूल गाँव के इस किनारे था। मैदान में से एक मील पैदल चलकर गाँव की तरफ जाना पड़ता था।

एक दिन बारिश हो रही थी, सुबह के लगभग दस बज रहे थे, मैं स्कूल जा रहा था। सीधे रास्ते से न जाकर जल्दी पहुँचने के इरादे से मैं मुहल्ले के अन्दर एक शार्ट-कट रास्ते से जा रहा थ। सारा रास्ता आम-कटहल के पेड़ो से आच्छादित था। थोड़ी देर पहले मूसलाधार बारिश हो चुकी थी। आकाश मेघों से आच्च्छन्न था। पेड़ों की डालों से टप-टप पानी टपक रहा था। रास्ता एक जीर्ण टूटे-फूटे घाट वाले पुराने तालाब के किनारे से होकर गया था। उसी रास्ते से जा रहा था। उसी समय एक अनजानी औरत और घड़ा लिए बगल की पगडण्डी से निकल कर मेरे सामने आ गई। खूब गोरा रंग। हाथ में कई कंगन। चौड़े लाल पाड़ की साड़ी। उम्र चौबीस-पच्चीस। शायद वह पीनी लेने तालाब जा रही थी। मुझे देखकर उसने घूँघट खींच लिया और रास्ते के किनारे खड़ी ओ गई। मैं उसके बगल से जल्दी-जल्दी आगे चला गया। इस समय स्वीकार करते मुझे लज्जा आ रही है, किन्तु तब मैं युनिवर्सिटी का नया-नया ग्रेजुएट था, उम्र थी सिर्फ बीस की,

अविवाहित। संस्कृत का काव्य-साहित्य के पृष्ठ-पृष्ठ में जिन तरिलकाओं, मधुलिकाओं व बासंतियों का उल्लेख था, उनके साथ अंग्रेजी काव्य की कई रोमांटिक नायकाओं की कल्पना में ही मेरा तरूण मन मग्न रहता था। इसालिए उस दिन उस सुश्री तरूणी ने, उसके कँगनयुक्त अनावृतसुन्दर बाँहों ने और इन सबसे ज्यादा उसकी साड़ी में से ढलक रही पूरी देह की महिमामय सीमा-रेखाओं ने मुझे मुग्ध व अभिभूत कर दिया था। मेरे मन के अन्तर में एक प्रकार की नई अनुभूति का आभास हो रहा था। छाती में रक्त की ताल-ताल में उस दिन एक नया स्पंदन मैं भली-भाँति महसूस कर रहा था।

शाम को रेल लाइन के किनारे मैदान में जाकर चुपचाप बैठ गया। ताल-बागान के ऊपर सूर्य अस्त हो रहा था। बैंजनी रंग के बादल देखते-देखते धीरे-धीरे धूसर और फिर काले होने लगे।....आकाश में बादल के कई टकड़े देखने में ऐसे लग रहे थे, जैसे आदिम युग के जगत के ऊपरी भाग का विस्तीर्ण महासागर हो।...खूब कल्पना कर रहा था–उस समुद्र के चारों तरफ एक गूढ़ रहस्यमय अज्ञात महादेश है, जिसके अंधकारमय विशाल नगर में प्राचीन युग के लुप्त विशालकाय प्राणी विचरण कर रहे है।

दिन बीत गया–रात हो गई। डेरे पर आकर कीट्स को पढ़ना शुरू किया। पढ़ते-पढ़ते कब सो गया, मिट्टी का दिया बाती खत्म हो जाने पर कब बुझ गया, यह पता ही नही चला। बहुत रात गए उठकर देखा–बाहर बूँद-बूँद बारिश हो रही थी। आकाश में बादल व अंधेरा था।

उसके अगले दिन भी मुहल्ले के भीतरी भाग से गया। मगर उस दिन उसे देख नहीं पाया। आते समय भी उसी मार्ग से आया। मगर कोई नजर नहीं आया। अगले दिन रविवार था। सोमवार फिर उसी रास्ते से गया। तालाब के पास पहँचते ही देखा, वह पानी भरकर घाट की सीढ़ियों से ऊपर उठी, मझे देखा तो घूँघट सरका कर एक ओर चुपचाप खड़ी हो गई।...मेरे खून की गति एकबारगी जैसे तेज हो गई, जल्दी-जल्दी कदम उठा कर मैं आगे बढ़ गया।...रास्ते के मोड़ पर पहुँचकर अपनी इच्छा को रोक नहीं पाया तो एकबार पीछे मुड़कर ताका, देखना क्या हूँ, वह घाट पर खड़ी घूँघट हटाकर कौतूहल दृष्टि से मेरी ओर देख रही है। मुझे अपनी ओर ताकते देख कर उसने झटपट घूँघट निकाल दिया।

पहले वाले रास्ते से जाना बिलकुल बन्द कर दिया। रोज तालाब वाले रास्ते से ही जाता। दो-एक दिन के बाद उसे एक दिन फिर देख लिया। मुझे लगा, उस दिन भी उसने आग्रह के साथ मेरी ओर देखा था। इस प्रकार पन्द्रह-बीस दिन बीत गए। किसी दिन उसे देख पाता तो किसी दिन नहीं देख पाता। लेकिन यह मैं खूब

जान गया था कि मेरे प्रति वह दिन-ब-दिन उत्सुक हो उठी है। आजकल मुझे देखते ही वह पहले जितना घूँघट नहीं निकालती थी। मुझे न जाने क्यों उसकी धीरता-गम्भीरता, मधुर सुन्दरता और देह की शान्त कमनीयता दिन-ब-दिन आक्टोपस की तरह जकड़ने लगी।....

❑

एक दिन की बात है। तब आश्विन मास की शुरूआत थी, सर्दी आरंभ हो गयी थी। नीले आकाश में छोटे-छोटे सफेद बादल के टुकड़े उड़ रहे थे...चारों तरफ तेज धूप खिली हुई थी...रास्ते के किनारे के पेड़ पौधों के झुरमुट से तेज गंध वातावरण में व्याप्त थी।...शनिवार को सुबह-सुबह स्कूल से लौट रहा था। रास्ता निर्जन था—कहीं कोई नहीं। तालाब वाले रास्ते से चला जा रहा था, पक्षियों का एक झुण्ड तालाब के उस पार वाले पेड़ो पर बैठा शोर मचा रहा था। तालाब के पानी के नीले फूलों के झुण्ड धूप की तपिश में मुरझा गए थे। मुझे आशा नहीं थी, कि इस वक्त वह तालाब के घाट पर आएगी। मगर देखा, वह पानी भरकर ऊपर आ रही हैं। इसके पहले तीन-चार दिन तक उसे देखा नहीं था, अचानक ज जाने जी में क्या आया कि एक बड़ा दूस्साहस का काम कर बैठा। उसके पास जाकर बोला, 'देखिए, कृपया बुरा मत मानिएगा। मैं यहाँ के स्कूल में काम करता हूँ, रोज इस रास्ते से आते-जाते आपको देखना हूँ, मेरी बड़ी इच्छा है कि आप मेरी बड़ी बहन बन जाएँ। मैं आपको भाभी बोलूँगा, मैं आपका छोटा भाई हूँ। ठीक है न ?'

वह मेरी बात का प्रथम अंश सुनकर चौंकने किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सी हो गयी, दूसरा अंश सुनकर उसके चौंकने का भाव कुछ दूर हुआ। बगल में घड़ा दबाए और आँखें झुकाए वह कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रही।

मैं हाथ जोड़कर बोला, भाभी, मेरी यह इच्छा आपको पूरी करनी होगी। मुझे छोटे भाई का अधिकार आपको देना ही होगा।'

उसने आधा घूँघट खोलकर शांत-स्थिर दृष्टि से मेरी ओर देखा। सुन्दर चेहरा मैंने पहले कभी देखा न हो, ऐसी बात नहीं, ऐसी बात नहीं, फिर भी लगा, उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखों का शांत भाव और होंठों के नीचे की एक विशेषमुद्रा—इन दो के मेल से उसके सुन्दर चेहरे की गढ़न में ऐसा वैचित्र्य आ गया था कि ऐसा सौंदर्य कहीं देखा नहीं।

पल भर तक हम दोनों ही खामोश रहे। फिर उसने पूछा, 'तुम्हारा घर कहाँ है ?'

आनन्द के मारे सारा शरीर सिहर उठा। बोला, 'कलकत्ते के पास, चौबीस परगना जिले में। यहाँ स्टेशन के पास रहता हूँ।'

उसने पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है ?'

मैंने नाम बताया।

वह बोली, 'तुम्हारे घर मैं कौन-कौन हैं ?'

'अब घर में सिर्फ माँ और दो छोटे-छोटे भाई हैं। बाबा को मरे दो साल हो गए।'

उसने जैसे आग्रह भरे स्वर में कहा, 'तुम्हारी कोई बहन नहीं ?'

मैं बोला, 'नहीं। मेरी दो बड़ी बहनें थीं, बहुत दिन हुए, वे मर गयीं। बड़ी बहन जब मरी थीं, बहुत दिन हुए, वे मर गयीं। बड़ी बहन जब मरी थीं, तब मैं बहुत छोटा था, दूसरी बहन पाँच-छः साल पहले मरी थी। मैं इसी बहन को जानता था, वह मुझे बहुत प्यार करती थी। वह मुझसे छः साल बड़ी थी।'

उसकी आँखों में जरा-सी व्यथा उभर आयी। पूछा, 'तुम्हारी दूसरी बहन आज जिंदा होती तो कितने साल की होती ?'

'यही छब्बीस साल।'

वह जरा-सा मुस्करा कर बोली, हूँ, यानी इसीलिए मेरा भैय्या एक बहन की खोज में निकला है। क्यों ?'

कितनी मीठी मुस्कराहट थी ! कितना मधुर शान्त भाव ! सिर नवा कर मैंने उसे प्रणाम किया और पैर की धूल लेकर बोला, 'तो छोटे भाई का अधिकार दे दिया न आपने ?'

वह चेहरे पर शांत मुस्कान बिखेरे चुप रही।

मैं बोला, 'भाभी, मैं जानता था, मेरी खोज सफल होगी। आग्रह के साथ खोजो तो भगवान भी मिल जाते हैं, फिर मुझे अनायास ही बहन कैसे नहीं मिलती। अच्छा, अब मैं चलूँ। मगर आप मुझे भूल मत जाना भाभी, आपसे मेल-मुलाकात होती रहनी चाहिए। रविवार को छोड़कर मैं हर रोज सुबह-शाम यहाँ से गुजरता हूँ।'

हमारे मैदान के किनारे जाल-बगान के पक्षी रोज सुबह-शाम शोर मचाते हैं। उनमें न जाने कौन-सा एक पक्षी धीरे-से स्वर निकालता हुआ क्रमशः पंचम-आलाप में पहुँच जाता। जिस दिन मन बोझिल होता।

उस दिन उस स्वर का उदास माधुर्य प्राणों को जरा भी नहीं सुहाता।...आज देखा, पक्षी के गान-स्वर के एक-एक स्तर पर हृदय कैसा लघु से लघुतर हुआ जा रहा है। प्रतीत होने लगा, जीवन केवल कुछ स्निग्ध छाया-शीतल पक्षियों के गान-भरी दुपहरी के अलावा कुछ नहीं, और पृथ्वी सिर्फ नीलाकाश के नीचे इधर-उधर बेतरतीबी से फैले तालों-नारियलों के वन से निर्मित है—जिसके जरा से

कंपन सेदीर्घ-श्यामल पत्ते दुपहरी की अवसन्न धूप में चमचमा रहे हैं।

उसके अगले दिन भाभी के साथ मुलाकात हुई छुट्टी के बाद शाम को। भाभी ने जैसे दबी हँसी के स्वर में पूछा, 'अरे, लगता है, आज विमल को बहुत सवेरे स्कूल जाना पड़ा था ?'

मैने जवाब दिया, 'नही भाभी, मैं सवेरे तो ठीक समय पर ही गया–आप ही नहीं दिखीं, अब सारा दोष मुझ पर मढ़ना चाहती हैं, है न ? और भाभी, घाट पर सवेरे और भी कई औरतें थीं।'

भाभी हँस पड़ी, बोली, तब तो मेरा भाई बड़ी आफत में फंस गया होगा उस समय।'

मैं जरा शरमा गया, ठीक से जवाब न दे पाकर बोला, 'यह बात नहीं है, भाभी। मैं यहाँ अपरिचित हूँ, मुहल्ले के भीतरी रास्ते से आता-जाता हूँ, कोई बुरा न मान ले, इसलिए... ।'

भाभी की आँखों की कौतुक-दृष्टि अभी ओझल नहीं हुई थी। बोली, 'मैं सुबह घाट के पानी में ही थी, विमल। तुमने उस पेड़ के नीचे जाकर एक बार घाट की ओर देखा, मगर मुझ पर नजर नहीं गयी।'

मैंने पूछा, 'भाभी, आपका मायका कहाँ है?'

भाभी ने उत्तर दिया, 'खोलापोता मालूम है ? उसी खोलापोता में... ।'

मैं बगलें झांकने लगा तो उसने विशद जानकारी देते हुए कहा, 'क्यों, खोलापोता के रास के बारे में नहीं सुना ?' भाभी की हँसी-भरी दृष्टि जैसे जरा-सी गर्व-मिश्रित हो उठी। लेकिन यह बताना जरूरी है कि खोलापोता नामक किसी गाँव का नाम मैं पहली बार सुन रहा था। फिर भी भाभी का जहाँ मायका है और जहाँ रास होता है, ऐसे विश्वविख्यात खोलापोता के भौगोलिक ज्ञान के बारे में मेरी अनभिज्ञता कहीं उसे दुखी न कर दे, यही सोचकर मैंने कह दिया, 'अच्छा वो खोलापोता ! वह तो...कौन-से जिले से...'

भाभी से मदद मिलने की उम्मीद थी, मगर वह इस बार खामोश रही। उसके मुस्कराते हुए सरल चेहरे की ओर देखकर मुझे करूणा हुई, इन जटिल भौगोलिक तत्त्वों की मीमांसा को लेकर उसे पीड़ित करने की मेरी आगे इच्छा नहीं हुई।

बोला, 'अच्छा भाभी, तो मैं चलूँ।'

भाभी ने झटपट घड़े के मुँह से केले के पत्ते में मुड़ा न जाने क्या निकाला। उसे मेरे हाथ में देकर बोली, 'कल षष्ठी के उपलक्ष्य में खीर की गुड़िया बनायी थी। साथ में कुछ केले के बड़े है, डेरे पर जाकर खा लेना।'

❑

चार-पाँच दिन बुखार भोगने के बाद एक दिन स्कूल जा रहा था, रास्ते से भाभी से मुलाकात हो गयी। मुझे आते देखकर भाभी उत्सुक नजरों से बहुत दूर से मुझे देखती रही थी। निकट पहुँचा तो पूछा, 'यह क्या विमल, चेहरा क्यों इतना सूखा है?'

बोला, 'बुखार हुआ था, भाभी।'

भाभी उद्वेग से बोली, 'ओह, तभी तुम चार-पाँच दिन से आए नहीं। मैंने सोचा था, शायद स्कूल की छुट्टियाँ हैं। उफ्, कितने दुबले हो गए हो, विमल।'

उसकी आँखों से सचमुच व्यथा-मिश्रित स्नेह उमड़ पड़ा, मुझे बेहद मानसिक तोष हुआ, मन में आनन्द की अनुभूति हुई। हँसकर बोला, 'यह देश आप लोगों का है भाभी, एक बार अतिथि बनकर आओ तो इस सत्कार से कौन नहीं अस्थिर होगा?'

भाभी ने पूछा, 'अच्छा, विमल, यहाँ तुम्हारे लिए खाना कौन बनाता है ?'

मैं बोला, 'और कौन बनाएगा, मैं खुद बनाता हूँ।' भाभी जरा देर तक चुप रही, फिर बोली, 'सुनो विमल, एक काम क्यों नहीं करते।'

मैंने पूछा क्या भाभी?'

वह बोली, 'माँ को इस पूजा की छुट्टियों के बाद ले आओ। इस तरह विदेश में कैसे गुजारोगे, विमल ? मेरा राजा भैय्या, छुट्टियों के बाद माँ को जरूर लाना। इस गाँव में कई मकान मिल जाएँगे। हमारे मुहल्ले में ही एक मकान खाली है। दुख-सुख में कोई तो पास में होना चाहिए। हाँ, आज जो पथ्य लिया था, उसे किसने बनाया था ?'

मुझे हँसी आ गयी, बोला, 'और कौन बनाएगा ? खुद ही बनाया था।'

उसने मेरी ओर न जाने किस भाव से पल भर देखा। उसके उस दिन के उस सह।नुभूतिविगलित स्नेह-सिक्त मातृ-मुखड़े की काली नम आँखें मुझे परवर्ती जीवन में कई दिनों तक याद रहीं।

उस दिन स्कूल से आते वक्त देखा, भाभी जैसे मेरी ही प्रतीक्षा कर रही थीं मुझे देखते ही केले के पत्ते में न जाने क्या रखा हुआ मेरे हाथ में देकर बोली, 'जब तक तबियत बिलकुल ठीक नहीं हो जाए, घर जाकर रात का खाना बनाने की जरूरत नहीं, विमल। यह खाने का सामान है, रात को खाना... ।'

लगा, थोड़ी देर पहले ही बनाकर लायी थीं। केले का पत्ता खासा गरम था। डेरे पर आकर केले का पत्ता खोलकर देखा, कुछ रोटियाँ थीं, मोहन भोग था और मछली।

उसके अगले दिन छुट्टी के बाद डेरे जाते वक्त देखा, भाभी फिर हाथ में खाने की चीज थामें खड़ी है। मेरे हाथ में सब कुछ थमाकर बोली, 'क्यों विमल, तुम दूध लेते हो ?'

मैं बोला, 'क्यों वरना क्या दूध भी आप ही देंगी ? सच कहता हूँ भाभी, मेरे लिए आप यह निरर्थक कष्ट मत कीजिए, नहीं तो मैं इस रास्ते से कभी नहीं गुजरूँगा।'

भाभी का गला भारी हो आया, मेरा दायाँ हाथ पकड़ धीरे-धीरे पास आकर बोली, 'मेरे राजा भैया, ऐसी बात मत बोलो। अच्छा, अगर मैं तेरी मंझली दीदी होती तो यह बात आज मुझसे कहते ? मेरे सिर की कसम, इस रास्ते से रोज ही गुजरना।'

उस दिन से भाभी ने रोज रात का खाना देना शुरू कर दिया। सात-आठ दिन के बाद रोटी के बदले किसी दिन लूची, तो किसी दिन पराँठा। उसके आग्रह-भरे मुखड़े की ओर देखकर मैं इस स्नेह-दान को अस्वीकार करने की हिम्मत नहीं जुटा पाता, बल्कि यह सोचकर बेचैनी महसूस करता कि मेरे लिए रोज खाने का इंतजाम करने में न जाने भाभी को कितनी असुविधा से दो-चार होना पड़ता होगा।

आश्विन का महीना आया तो पूजा की छुट्टियाँ आ गई और मैंने पढ़ाई से छुटकारा पा लिया।

सारी छुट्टियाँ उस बार बेहद आनंद में गुजरीं। मेरा गगन व हवाएँ जैसे रात-दिन अफीम की रंगीन नींद में डूबे रहते। भोर को आँगन के पेड़ के फूलों से आच्छादित फर्श को देखकर हेमन्त की रात की ओस से भीगे हंसों का शरीर जिस प्रकार सिहर उठता है, उसी प्रकार मेरा शरीर भी सिहर उठता।...न जाने किसके ऊपर अपने जीवन का सारा भार असीम निर्भरता के साथ सौंप कर मेरा मन जैसे हलका-फुलका होकर भटक रहा था।

छुट्टियाँ खत्म हो गईं। स्कूल खुलने के पहले दिन वह मुझे रास्ते में नहीं दिखी। शाम को जब लौटने लगा तो शीतल हवा वह रही थी।...रास्ते के किनारे एक जगह की थोड़ी मिट्टी न जाने किन लोगों ने बारिश की मौसम में ले ली थी, वहाँ पर पेड़-पौधों और लताओं का सधन झुरमुट उग आया था...शीतल हेमंत के अपराह्न की छाया हरे झुरमुट पर उतर आयी थी...एक ऐसी मीठी निर्मल सुगंध पेड़ों से निकल रही थी, झुरमुट की सुन्दरता इस कदर बढ़ गयी थी, जैसे यह सारा झुरमुट वन-लक्ष्मी की श्यामल साड़ी का आँचल हो।

अगले दिन मैंने उसे देखा।

उसने मुझे देखा नहीं था, अपने में खोई वह चुपचाप घाट की सीढ़ियाँ उतर रही थी। मैंने पुकारा, 'भाभी !'

भाभी एकदम से चौंक पड़ी और मेरी ओर देखा।

'अरे विमल, तुम? कब आए? क्या आज स्कूल खुल गया? कैसे हो...?' वही परिचित प्रिय कण्ठ-स्वर। वही स्नेह-सिक्त शान्त दो आँखें। भाभी ने मेरे मन में छुट्टियों से पहले जिस स्थान पर अधिकार जमाया था, छुट्टियों के बाद वह स्थान और बढ़ गया था।...मैंने सारी छुट्टियों में उसे याद किया था, विभिन्न आकृतियों व विभिन्न स्थितियों में उसकी कल्पना की थी, विभिन्न गुणों से उसे लेकर अपने मुग्ध मन में कई तरह की बातें सोची थी। अपने मन-मन्दिर में अपनी श्रद्धा व प्यार से गढ़ी उसकी कल्पना-मूर्ति को कई बार अर्घ्य-चंदन का लेप लगाया था। इसलिए उस दिन जिस भाभी को देखा, वह पूजा की छुट्टियों से पहले वाली भाभी नहीं थी, वह मेरी वही निर्मल, पूत हृदय, पुण्यमयी मानसी प्रतिमा थी, मेरी पार्थिव भाभी को उसने अपने महिमा-मंडित दिव्य वसन से आच्छाति-आवृत कर रखा था। अपने स्नेह-करुणा के ज्योति-वाष्प से भाभी की रक्त-माँस की देह पर एक ओट निर्मित की थी।

मेरा सिर श्रद्धा के संस्भ्रम से झुक गया, मैंने उसके पाँवों की धूल उठा कर प्रणाम किया। मेरे हर पल की संगिनी थी भाभी।...मैं सिर्फ जरा-सा हँसकर चुप रहा।

भाभी ने पूछा, 'माँ तो ठीक है न।'

मैंने जवाब दिया, 'हाँ भाभी, वे ठीक है। उन्हें मैंने आपके बारे में बताया था।'

भाभी ने पूछा, 'उन्होंने क्या कहा ?'

मैंने कहा, 'सुनकर माँ की आँखों में पानी भर आया था, बोलीं एक बार उससे मिलवाओगे, विमल? उसे देखकर शायद नलिनी का शोक भूल जाऊँ।'

भाभी की दोनों आँखों में भी पानी तिर आया। बोली, 'तो फिर इसी महीने माँ को ले क्यों नहीं आया, विमल ?'

मैं बोला, 'यह इस बार सम्भव नहीं था, भाभी।'

भाभी जरा नाराज हुईं, बोली, 'विमल, याद नहीं, उस बार कैसी तकलीफ सही थी। इस विदेश में अकेले हो, माँ को लाओगे तो यह झुठमूठ की तकलीफ तो सहनी नहीं पड़ेगी।'

मैंने जवाब दिया, 'भाभी, मैं तो अब ऐसा नहीं सोचता कि मैं विदेश में हूँ। जिस देश में मेरी भाभी रहती है, वह देश मेरे लिए विदेश नहीं। माँ यहाँ न भी हों

तो मुझे चिन्ता कैसी।'

भाभी की आँखों में लाज तिर आई, मेरी तरफ ठीक से देख नहीं पाई, बोली, 'हाँ, मैं तो सब कुछ करती हूँ। अरे, कुछ कर पाना क्या मेरे वश में है। हम कितनी बेबस हैं, यह तो तुम जानते हो, भैया। यह सब नहीं चलेगा, इस महीने ही माँ को ले आओ।'

मैंने किसी तरह इस प्रसंग को दबा दिया और वापस आ गया।

अगले दिन छुट्टी के बाद भाभी से मुलाकात हुई। अन्यान्य बातचीत के बाद आते समय उसने केले के पत्ते में रखी न जाने क्या चीज निकाल ली। उसके हाथ में केले का पत्ता देखने ही मुझे डर लगता है। मैंने शंकित होकर कहा, 'यह फिर क्या है, भाभी ? फिर वही...।'

भाभी ने बीच में ही कहा, 'मेरी क्या कोई साध नहीं है, विमल। भाई-दूज तो ऐसे ही निकल गई, कुछ कर नहीं पाई।' फिर केले के पत्ते में रखा रहस्य मेरे हाथ में देकर बोली, 'यह खाकर मुँह मीठा कर लेना, और यह लो—इससे एक कपड़ा खरीद लेना।'

बात पूरी होने से पहले ही भाभी मेरे हाथ में दस का एक नोट थमाने लगी। मैं चौंक पड़ा , बोला, 'यह क्या भाभी, नहीं नहीं, यह मैं किसी तरह नहीं लूँगा खाने की चीज मैं ले लेता हूँ, मगर रुपए नहीं ले सकूँगा।'

मेरी बात का स्वर शायद जरा तीखा हो गया था, भाभी हठात् अचकचा गई, उसका आगे बढ़ा हाथ हवा में ही थम गया और रह सकते की हालत में खड़ी रही। फिर जरा-सा अवाक् होकर मेरी ओर ताकती रही और एकाएक उसकी आँखों का रूका हुआ बाँध टूट पड़ा और झरझर कर आँसू बहने लगे। मेरे दिल में शूल-सा चुभ गया।

इस बेहद सरल व आग्रह-भरे स्नेह-उपहार को रूखाई से ठुकराकर मैंने उसके दिल को जो लज्जा और पीड़ा पहुँचाई थी, उसका प्रतिघात अदृश्य रूप से मेरे दिल को भी आ लगा।

मैंने जल्दी से दोनों हाथें से उसके पाँव की धूल ले ली और हाथ से नोट व खाने की चीज भी उठा ली। बोला, 'भाभी, भाई समझकर मेरा यह अपराध माफ कर देना। फिर कभी आपकी बात की अवहेलना नहीं करूँगा।...

भाभी की आँखों से आँसू अब भी थमे नहीं थे।

दोनों आँखों में आँसू भरे उस तरुणी देवी की मूर्ति की ओर देखने का साहस न हुआ तो मैं सिर झुकाए अपराधी की तरह चुचाप खड़ा रहा।

डेरे पर आकर देखा, केले के पत्ते में कई दूध-सी सफेद चंद्रपुलियाँ थीं—खूब

स्वादिष्ट। सारी रात नींद की मदहोशी में भाभी की विषण्ण कातर आँखें बार-बार मेरे सामने उभर आती।

❑

कुछ महीने बीत गए।

प्रायः भाभी के साथ मुलाकात होती। हम इस कदर भाई-बहन बन बैठे कि लगता ही नही था कि हम भाई-बहन नहीं। एक दिन चला आ रहा था, मेरी शर्ट में एक बटन नहीं था। भाभी ने पूछा, 'यह क्या, बटन कहाँ गया ?'

मैंने बोला, 'क्या पता भाभी, पता नहीं कब टूटकर गिर गया।'

अगले दिन देखा, वह सुई-धागा व बटन लेकर हाजिर है। मैं बोला, 'भाभी, यह घाट का रास्ता है, बटन टांकते वक्त किसी ने देख लिया तो क्या सोचेगा। बल्कि आप सुई मुझे दे दीजिए, घर जाकर खुद ही बटन टाँकने की कोशिश करूँगा।'

भाभी हँसकर बोली, 'तुम कोशिश करके जो कर लोगे, वो मैं जानती हूँ। अब जरा इधर सरक आओ।'

मैं थोड़ा आगे सरक गया। वह निश्चिंत होकर बटन टाँकने लगी। उसकी बजाय मैं ही ज्यादा डर रहा था। सोचा, भाभी को तो कुछ मालूम ही नहीं, अगर किसी ने देख लिया तो सारा कष्ट उसे ही भोगना पड़गा।

एक दिन हठात् भाभी ने पूछा, 'विमल, गोकुल-पीठियाँ खायी थीं। सो यह चीज मैंने बहुत खाई थी मगर भाभी को खुश करने के लिए बोला, 'यह क्या होता है, भाभी ?'

फिर तो मेरी खैर नहीं। अगले दिन शाम को भाभी केले के पत्ते में पीठियाँ लेकर, हाजिर थीं।

मुझसे बोली, 'तुम यहाँ मेरे सामने ही खाओ। घड़े के पानी से झटपट हाथ धो लो।'

मैं बोला, 'सर्वनाश, भाभी इतनी पीठियाँ खाते-खाते इस रास्ते पर लोग आ जाएँगे, यह ठीक नहीं, मैं घर जाकर खा लूँगा।'

भाभी छोड़ने वाली पात्रा नहीं थी। बोली, 'नहीं, कोई नहीं आएगा, विमल। तुम यहीं खाओ।'

खायीं, पीठियाँ बहुत अच्छी नहीं बनी थी। मेरी माँ के निपूण हाथों से बनी पीठियों जैसी नहीं थी। लगा, शायद नई-नई बनानी सीखी थी। स्वाद अच्छा नहीं था। बोला, 'वाह भाभी, बहुत बढ़िया बनाई हैं। यह कहाँ से बनाना सीखा। शायद मायके में? क्यों?'

भाभी हँसते-हँसते बेहाल। बोली, 'यह मैं...हमारी गुरु-माँ आई थीं, वे शहर की रहने वाली हैं, खाने के कई अच्छे-अच्छे व्यंजन बनाना जानती है, उन्ही से सीख लिया था।'

फिर तो सारी सर्दी अन्यान्य पीठियों के अलावा गोकुल-पीठियों की पुनरावृति में ही बीत गयी। वह जो मैंने कहा था, बढ़िया बनाई हैं, इससे मेरी खैर कहाँ !

एक बात है।

कुछ दिनों से मेरे मन में एक आग्रह धीरे-धीरे जड़ पकड़ रहा था कि मैं जीवन को व्यापकता के साथ अनुभव करूँ। अपनी इस बीस-इक्कीस साल की उम्र में मेरी जिन्दगी इस छोटे से देहान्त से पिंजड़े के पक्षी की तरह कैद होकर असहनीय हो उठी थी। अब तक चला ही गया होता। मगर यहाँ मेरा एकमात्र बंधन थी भाभी। उसके आग्रह भरे स्नेह व यत्न की वजह से यह अशान्त इच्छा कुछ दिनों के लिए दबी हुई थी। ऐसे समय माघ महीने के अन्त में मेरे एक मित्र ने मुझे लिखा कि उनके कारखाने की तरफ से काँच का काम सिखाने के वास्ते कुछ लड़के यूरोप-अमरीका भेजे जाएँगे, सो अगर मैं जीवन में कुछ करना चाहता हूँ तो जल्दी ही मुरादाबाद जाकर उससे मुलाकात करूँ। वह वहाँ के एक काँच के कारखाने में मैनेजर था।

पत्र पाकर सारी रात मुझे नींद नहीं आई। यूरोप-अमरीका! चारों ओर संगीत-मुखरित श्याम समुद्रतट...आकुल सागर की नील जलराशि...दूर हरे बिन्दु की तरह छोटे-छोटे द्वीप कर्सिका...सिसली! नया आकाश, नई अनुभूति...वोवर का सफेद खड़िया पहाड़...प्रशस्त राजपथ पर लोगों का तेजी से आना-जाना...लवगेट सर्कस...टोटनहाम कार्ट रोड...वार्चविला पापलर-मेप्ल पेड़ों के श्यामल पत्र-गुच्छ... मेरे कल्पनालोक की साथिनें कनक-केशिनी क्लारा, मेरी, यूजीनी...

अगले दिन सवेरे पत्र लिखा—'मैं बहुत जल्दी रवाना हो रहा हूँ।' स्कूल में उसी दिन नोटिस दिया—पन्द्रह दिन के बाद काम छोड़ दूँगा।

मन ठीक नहीं था, सो कुछ दिनों तक लम्बे रास्ते से स्कूल आता-जाता रहा। दस-बारह दिन के बाद मुहल्ले के रास्ते से आने-जाने लगा तो एक दिन भाभी से मुलाकात हो गई। भाभी ने जरा-सी नाराजगी दिखाते हुए कहा, 'विमल, तुम बड़े गुण वाले भाई निकले। इन चार-पाँच दिनों में बहन मरी या जिंदा है, यह भी पता नहीं किया।'

मैं बोला, 'भाभी, पता करता तो यह अस्वाभाविक ही होता। बहनें ही भाइयों के लिए रोती मरती हैं, भाई कहाँ सोचते हैं बहनों के बारे में। दुनिया भर में भाई-बहनों का यही हाल है।'

भाभी खिलखिला कर हँस पड़ी। इस तरुणी की हँसी बालिका की तरह इस कदर मीठी व निर्मल थी कि इसका सिर्फ लक्ष्मी पूर्णिमा की रात की ज्योत्स्ना की तरह उपभोग किया जा सकता था, वर्णन करना मुश्किल था। बोली, 'यह सब जानती हूँ, बस, ज्यादा बातें बनाने की जरूरत नहीं, तुम्हारा क्या यह गुण मैं जानती नहीं। मगर जानकर क्या करूँ, कोई उपाय भी तो नहीं। हाँ, यह बता सच-सच, माँ को कब ला रहा है ?'

यहाँ काम छोड़ने की बाबत मैंने भाभी को कुछ भी बताया नहीं था। जानता था कि बता दूँगा तो उसके मन को भारी आघात पहुँचेगा। एक बार सोचा, यह तो बताना ही होगा, एक दिन क्यों न बता दूँ। मगर यह सरल हँसता हुआ चेहरा...निश्चिन्त शान्त भाव...बताने की हिम्मत नहीं हुई। मन ही मन बोला, 'तुम लोग लगता है सिर्फ स्नेह ही देना जानती हो ? तुम लोगों के स्नेह-पात्र की विदाई का बाजा एक दिन बज पड़ेगा, इस बारे में इतना अज्ञान क्यों।'

पूछा, 'भाभी, एक बात कहनी थी, इतने थोड़े-से दिनों में आप मुझे इतना चाहने कैसे लगीं। अच्छा, आप, लोग जिसे चाहती हैं, यह भी नहीं देखतीं कि वह पात्र कैसा है ? मैं कौन हूँ, मेरे लिए आप इतना कुछ करती हैं।'

भाभी का चेहरा गम्भीर हो आया। उसमें यही एक आश्चर्यजनक बात थी कि चेहरा गम्भीर होते ही प्रायः उसकी आँखों में पानी भर आता, पानी झरते ही फिर हँस पड़ती। बिलकुल शरत् के आकाश की धूप-वर्षा की तरह। बोली, 'इतने दिन से तुम्हें बताया नहीं, विमल। आज यही कोई पाँच साल हुए मेरा भी छोटा भाई मेरे प्यार को काट कर चला गया, उसका भी नाम विमल था। जिन्दा होता तो तुम्हारी तरह था। तुम जिस रोज पहली बार इस रास्ते से गुजरे थे, तुम्हें देखने ही मेरे हृदय में सागर मचलने लगा था, उस दिन घर जाकर मन-ही-मन खूब रोई थी। तुम इसी रास्ते से जाते थे, मैं तुम्हें रोज देखती थी। जिस दिन तुमने खुद ही मुझे दीदी कहकर पुकारा, उस दिन से लेकर आज तक मैं किस सुख का अनुभव करती हूँ, यह तुम्हें बता नहीं सकती। तुम्हारी देखभाल करके और तुम जिस तरह बड़ी बहन का मुझे मान देते हो, उसे देखकर मैं विमल का बहुत-सा शोक भूल गई। वही एक भाई था मेरा। तुलसी-चौरे पर रोज शाम को हाथ जोड़कर कहती हूँ, भगवान, एक विमल को तो तुमने अपने पास बुला लिया, अब जो दूसरा विमल दिया है तो उसका सदैव मंगल करना। इसे मेरे पास ही रहने देना।'

आँखों में पानी होने की वजह से भाभी का गला अवरूद्ध हो गया। मैं कुछ बोला नहीं। बोलता भी क्या।'

थोड़ी देर के बाद भाभी ने खुद को सम्भाल लिया और दोनों नम आँखें उठाकर मेरी ओर देखा। कितनी सुन्दर वह दीख रही थी। दोनों काले नयन छलछला रहे थे, खिंची हुई भौंहें जैसे और भी तिरछी हो गई थीं, चिबुक का हिस्सा और भी परिस्फुट, जैसे किसी निपुण शिल्पी ने पतले बाँसों की सींकों से प्रतिमा तैयार की हो।...रास्ते के बगल में ही प्रथम फाल्गुन के मुग्ध आकाश के नीचे पौधों के एक झुण्ड में काँटे वाली डालों में खिले-खिले सफेद फूल झूम रहे थे...मीठी गंध ऐसी कि मन का रेशा-रेशा नशे में मदहोश।

दोनों में से कोई भी काफी देर तक कुछ बोल नहीं पाया। थोड़ी देर के बाद भाभी बोली, 'तभी कहती हूँ भैया, माँ को ले आओ। हमारे मुहल्ले में चौधरियों का घर खाली पड़ा है। वे लोग वहाँ रहते नहीं। बहुत बढ़िया मकान है, कोई असुविधा नहीं होगी। तुम माँ को ले आओ, वहीं रहना, पत्र लिख देंगे तो चौधरी राजी हो जाएगा। घर तो यों भी खाली पड़ा है। तुम्हारी बहन पराधीन है, कुछ करने की उसमें क्षमता नहीं। तुम्हारे साथ मिलना-जुलना, वो भी छिप-छिप कर, मेरे घर में इस बारे में किसी को कुछ नहीं मालूम। तुम दोनों वक्त घाट के रास्ते से गुजरना, तुम्हें देख कर ही शान्ति मिल जाएगी, भाई। माँ को इसी महीने ले आओ।'

यह कैसे होगा ?

जरा चुप रहकर पूछा, 'भाभी, मेरे यहाँ रहने से आपको बहुत खुशी होगी।'

भाभी बोली, 'क्या कहूँ, विमल ? माँ को लाओगे तो तुम्हारी तकलीफ कम होगी, यह सोचकर ही मुझे सुख मिलता हैं। और फिर दोनों भाई-बहन एक ही जगह रहेंगे, बारहों महीने दोनों वक्त मुलाकात होगी, क्यों, यह क्या कम है ?'

मैं बोला, 'भाई अगर कोई गुरुतर अपराध कर बैठे तो उसे क्षमा कर सकोगी?'

भाभी बोली, ' लो, सुनो मेरे भाई की बात ! मेरे प्रति भला तुम क्या अपराध करोगे?'

मैंने जोर देकर कहा, 'नहीं भाभी, मान लो, अगर मैं करूँ तो...?'

भाभी फिर हँसकर बोली, 'रहने दे, ऐसा कर ही नहीं सकते तुम। फिर छोटे भाई का भी अपराध भला अपराध होता है ! मैं बड़ी बहन हूँ न नुम्हारी !'

मेरी आँखों में पानी भर आया। अवरूद्ध कण्ठ से बोला, 'ठीक कहती हो, भाभी।'

भाभी अवाक् रह गई। बोली, 'विमल, क्या हुआ, भाई ? ऐसा क्यों कह रहे हो?'

चेहरा घुमाकर बोला, 'कुछ नहीं भाभी, ऐसे ही...।'

भाभी बोली, 'तब ठीक है। मेरे भाई का बचपना अभी गया नहीं है। हाँ, एक बात कहनी थी विमल, तुम्हें पसन्द है, इसलिए बागान के केले की काँदी कर रखी है, पक जाए तो तुम्हें खूब दूँगी।'

अगला दिन मेरे नोटिस के अनुसार स्कूल के काम का आखिरी दिन था। जाकर सुना, मेरी जगह नए आदमी की नियुक्ति हो चुकी है। स्कूल में सबसे बिदा लेकर चला आया।

फिर एक बार आखिरी मुलाकात करने अगले दिन तालाब के घाट ठीक वक्त पर जा पहुँचा। उससे मुलाकात होगी तो क्या कहूँगा, यह तय करके नहीं आया था। शायद उस दिन सब बातें खोलकर बता सकता, मगर उससे मुलाकात हुई नहीं। प्रत्येक दिन तो मुलाकात होती नहीं थी, प्रायः दो-तीन दिन के अन्तर मे मुलाकात होती थी। कभी ऐसा भी होता कि कुछ दिन तक लगातार मुलाकात हो जाती। उस दिन शाम को गया, अगले दिन सबेरे भी गया, किन्तु वह मिली नहीं।

उस दिन चलते समय वहाँ की मिट्टी एक कागज में समेट कर जेब में रख ली, जहाँ पहली मुलाकात के समय वह खड़ी थी।

उसी दिन शाम को माल-असबाब लेकर हमेशा के लिए उस गाँव को छोड़ दिया। मैदान की गोद में पेड़ों के झुरमुट में कहीं घुग्घू बोल रहा था।...

❑

यह आज से पच्चीस-छब्बीस साल पहले की बात है।

बाद में जीवन में कई घटनाएँ घटीं। न जाने भगवान की किस असीम अनुकम्पा से हमारा यह जीवन है, उपभोग करके देख तो पाया, वाह, यह कैसा मनोहारी है। फिर कोलोन गया, बिल्लोरी काँच के कारखाने में काम सीखने। कोलोन में कई दिन तक रहा। वहाँ रहते समय एक अमरीकी युवक से खूब दोस्ती हो गई—वह एलिन विश्वविद्यालय का ग्रेजुएट था। 'शिकागो इन्टरसन' समाचार-पत्र का फ्रांस-स्थित संवाददाता था। कोलोन में सब समय न रहने के बावजूद वह कभी-कभी वहाँ आता था। उसी के परामर्श से उसके साथ अमेरिका गया। उसकी मदद से दो-तीन बड़े-बड़े काँच के कारखानों में काम देखने का सुयोग मिला। पिट्सवर्थ के केनगी के यहाँ प्रायः छः महीने रहा, ताकि नए तरह के ब्लास्ट कार्नस का काम भली-भाँति समझ सकूँ।...मिडिल वेस्ट के एक काँच के कारखाने में प्रभात दे या बसु नामक एक बंगाली युवक के साथ मुलाकात हुई, उसका घर भी चौबीस परगना जिले में था। यह सज्जन जापान से बेसहारा अमरीका आया था और परेशानियों से दो-चार था। उसी की जबान से सुना, सेराटल में एक नया काँच का कारखाना खुला है। मैं जापान होकर आऊँगा, यह तय कर लिया। सो

आते समय सेराट्ल गया। जापान की खूब सैर करके वापस देश आ गया।

...माँ का इस बीच देहान्त हो चुका था। दोनों भाइयों को लेकर जा पहुँचा मुरादाबाद। वहाँ ज्यादा दिन रहना नहीं हो सका। बम्बई में शादी की थी, मेरे ससुर वहाँ डाक्टरी करते थे। बस, वहाँ जाकर अब से बम्बई का अधिवासी होकर रह गया।

बहुत दिनों से बंगाल नहीं गया, शायद सोलह-सत्रह साल बीत गए। बंगाल की मिट्टी-पानी व वन-प्रांत के लिए मन हमेशा आकुल रहता है। इसीलिए आज शाम को समुद्र के किनारे बैठा हरी साड़ी पहनी अपनी बंगला लड़की को ही याद कर रहा था।...राजबाई टावर के सिर के ऊपर अब भी जरा-जरा धूप थी। बंदर के नीले पानी में एक जहाज खड़ा-खड़ा धुआँ उगल रहा था, यह अभी चला जाएगा। बाएँ किनारे बहुत दूर ऐलिफेंटा की नीली सीमा-रेखा थी।...सोचते-सोचते प्रथम यौवन की एक स्मृतप्रायः धुंधली छवि बेहद स्पष्ट होकर याद हो आई। पच्चीस-ग्राम के जीर्ण कच्चे तालाब के घाट की सीढ़ियों से ऊपर-चढ़ रही थी एक आर्तवसना तरुणी ग्राम वधु। धूल भरे रास्ते के वृक्षस्थल पर लक्ष्मी के चरणचिह्नों की तरह उसके जल-सिक्त पाँवों की रेखाएँ अंकित थी।...अंधेरी शाम को उस रास्ते के किनारे रेणु-कुंज में कोयल कूक रही थी। उसका स्नेह-भरा पवित्र हृदय बाहरी जगत से निश्चित-अनिश्चित-सा था। आम-कटहल के वन के सिर के ऊपर के नीलाकाश में दो-एक तारे खिल कर सरल स्नेह-दुर्बल वधु को सस्नेह कृपा दृष्टि से देख रहे थे। फिर एक शान्त आँगन में तुलसी-चौरे पर स्नेहस्पद की मंगल-प्रार्थिनी वह कोई प्रणाम निरत मातृभूमि, करूणामय अश्रु छलछलाती...ओ लक्ष्मी, ओ स्नेहमयी, तुम क्या आज भी हो ? इन लम्बे पच्चीस सालों के बाद क्या तुम आज भी उस तालाब के टूटे घाट पर उसी तरह पानी लेने जाती हो ?...आज कितना अरसा बीत गया इस बात को, जीवन में बहुत कुछ देखा-सुना, बहुत कुछ पाया ...आज कितने दिनों के बाद फिर तुम्हारी याद आ गई...तुम्हें दुबारा देखने की बड़ी इच्छा होती है दीदी मणि, तुम क्या आज भी हो ? याद आ रहा है, बहुत दूर जैसे कोई फूस का घर...टिमटिमाता दिए का प्रकाश...मौन संध्या...नीरव व्यथा के आँसू...शान्त सौन्दर्य...स्नेहपूर्ण सादी साड़ी का आँचल...

अरब सागर के पानी में ऐसा करुण सूर्यास्त कभी नहीं हुआ।

❑❑❑
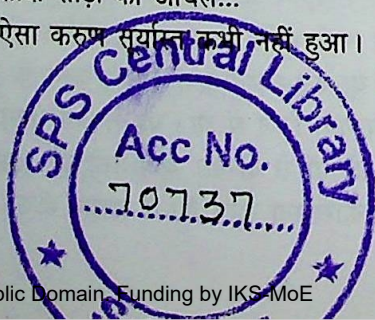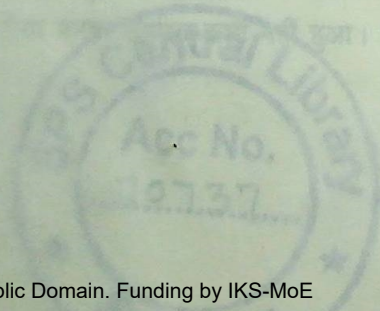
विभूतिभूषण वंद्योपाध्याय

जन्म : 12 सितम्बर, 1894, बंगाल

मृत्यु : 1 नवम्बर, 1950

बांग्ला साहित्य के अन्यतम वरेण्य साहित्यकार।

हिन्दी में कुछ अनूदित कृतियां :

अशनि संकेत
नारी एक रूप अनेक
मन वृन्दावन
देवयान
मां का संसार
अधिनायक
काला चांद
सागर सीमान्त
आदर्श हिन्दू होटल
आरोग्य निकेतन
पाथेर पांचाली
इच्छामती
नीलम की अंगूठी।